

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182197

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 83
S 56k

Accession No. H 3103.

Author .. २५८, १५८

Title १५८ नाग सफेद के-यू. १९६०

This book should be returned on or before the date
last marked below.

काले नाग सफेद केंचुल

लेखक
कमल शुक्ल



प्रभात प्रकाशन
दिल्ली * मथुरा

प्रकाशक :
प्रभात प्रकाशन
२०५, चावड़ी बाजार
दिल्ली

✱

लेखक :
कमल शुक्ल

✱

प्रथम संस्करण
नवम्बर १९६०

✱

मुद्रक :
गुलाबसिंह यादव
आगरा फाइन आर्ट प्रेस,
अहीरपाड़ा, आगरा

✱

सर्वाधिकार सुरक्षित

✱

मूल्य :
तीन रुपये

मन का पंछी

मन का पंछी उड़ा। वह एक ऐसे देश में पहुँचा जहाँ तूफान और तिनकों में परस्पर संघर्ष चल रहा था। ईश्वर की लीला थी तूफान हार गया और तिनके जीत गये। ऐक्य की बाहों में बड़ा बल होता है। संगठन शक्ति की सृष्टि करता है। जब वेगवती नदियों में पुल बाँधे जा सकते हैं, बाँध बनाकर उनके प्रवाह में स्थगन लाया जा सकता है तो क्या बिगड़ी और बदबूदार हवाओं का रुख नहीं बदला जा सकता ?

कर्मठता अकर्मण्यता के शिकंजे में जकड़ी अंधेरे कारागार में पड़ी मिसकियाँ ले रही है। उसको आँखों से खून के आँसू बह रहे हैं। उन्हें पोंछने वाले हाथ चाहिये। रात के राही चलते-चलते थककर सो गये हैं। सबेरा होने में अब देर क्यों ? जागरण के सपने नहीं देखे जाते। उसके लिये कल्पनाओं की उड़ानें नहीं भरी जातीं, बल्कि कुछ करना पड़ता है। लगन और ~~इच्छा~~ निश्चय ही आत्म निर्भरता को जन्म देते हैं। जिन्दगी का जो भी क्षण व्यतीत हो जाता है, वह फिर लौटकर नहीं आता। जीवन के ग्रन्थ में अग्रणीत अध्याय है, जिन्हें कोई भी पूरा नहीं पढ़ पाता। मनुष्य का कर्म-क्षेत्र इतना व्यापक और विस्तृत है कि उसकी कोई सीमा नहीं; लेकिन जिन्दगी बहुत छोटी होती है।

मन के छोड़े वास्तविक घोड़ों से बहुत तेज दौड़ते हैं; लेकिन उनका अस्तित्व कुछ भी नहीं होता। सधी चाल ही सादी जिन्दगी की प्रतीक है। आदमी यदि अपने को ठीक तरह से पहचान ले तो जय-पराजय, हिंसा और अहिंसा तथा स्वार्थ के चक्र ब्यूह में वह कभी न

चार

फैसे । आज के संसार को सबसे पहले मर्यादा का उदय चाहिये; क्योंकि वह अस्त होती जा रही है । छोटे बड़े राष्ट्रों की भाँति मनुष्य की अन्तर्नीति कुछ और चल रही है बाह्य कुछ और । यह धरती के पूतों के लिये बहुत ही लज्जास्पद है । व्यक्तिवादिता ने सार्वजनिकता और सहानुभूति को एकदम भुला दिया है । ईमान तिनका है और अधर्म तूफान । दोनों का संघर्ष आदि काल से चलता आया है, अब भी चल रहा है । लेकिन धरती पर धर्म जिन्दा है । इसीलिये अपने हर आक्रमण में तूफान हारता है और तिनके जीत जाते हैं ।

७८/२५६, अनवर गंज,
कानपुर

कमल शुक्ल

शरद ऋतु का सलोना प्रभात मुखरित हो रहा था। खंजन बोल रहे थे। पेड़ों की डालियों पर बैठे पक्षी अपना-अपना स्वतन्त्र गीत गाने में मगन थे। पूरब की ओर आकाश रक्ताभ हो रहा था, जैसे उस नीले सागर में कमल खिल रहा हो। सूरज निकल रहा था। उसकी स्वर्णिम रश्मियाँ जागरण तथा नवजीवन का संदेश लिये धरती पर उतर रही थीं। वे खेल रही थीं और हवा चल रही थी। मन-भावन सागर बैठा था एक तालाब के किनारे। उसके दूसरे तट पर बगुले उड़ रहे थे। दो-एक बैठे थे अपनी लम्बी चोंच फैलाये इस घात में कि मछली ऊपर आए, वह साँस लेने के लिये अपना सिर बाहर निकाले और उनका आहार बने। सागर की बंसी लग रही थी। उसमें कांटे के साथ नीचे आटे की गोली लटक रही थी और वह एकटक देख रहा था उस मोती जैसे निर्मल नीर की ओर। उस पर सुनहली किरणें पड़ रही थीं और वह चमक रहा था।

पीछे छोटी लाइन और बड़ी लाइन की पटरियाँ बिछ रही थीं। एक ट्रेन लखनऊ से कानपुर की ओर आ रही थी। निकट ही छोटा-सा पुल था उसी तालाब पर; क्योंकि वह दूर तक लम्बा पतला-सा चला गया था। कुछ लोग इसे गंगा का सोता कहते हैं। इसका पानी कभी सूखता नहीं। हाँ, गर्मियों में कम जरूर पड़ जाता है। इंटों के खम्भे कापे। सागर की निगाह पीछे की ओर मुड़ी। पुल पर से ट्रेन गुजर रही थी हहराहट भरा शोर करती हुई। सहसा बंसी हिली। वह देखने लगा कि शायद मछली फँस गई है; लेकिन यह केवल भ्रम था। मछली फँसी नहीं, फँसते-फँसते रह गई। आटे की गोली पानी में धुल गई। सागर ने बंसी बाहर निकाली तथा निकट ही

रेंग रहे एक केंचुए को पकड़ कांटे में अटका दिया और फिर बंसी लगाकर बैठ रहा ।

सागर इस समय बहुत प्रसन्न था । बदन पर वह अधिक कपड़े न लाद, जरूरतभर के पहने था । सर्दी उसे बिल्कुल नहीं लग रही थी क्योंकि जाड़ा गुलाबी था । दूर सामने कुछ खेतों के फासले पर एक अमराई थी । वह देखने में बहुत भली लगती; और ऐसे ही चारों ओर दृष्टि दौड़ाने पर उसे यह आभास होता कि वाकई दुनिया गोल है । हर तरफ से लगता कि पेड़ों ने एक दायरा बना रखा है । नील गायें दौड़ती हुई सामने से निकल जाती । कभी कोई हिरन चौकड़ी भरता हुआ नजर आता । सरसों के पीले, हरे, सुहावने खेत मन को मोह लेते । सागर का मन प्रसन्नता के अतीव आवेग से आलोड़ित हो उठा । वह प्रकृति के प्रति न जाने कितनी श्रद्धा से भर आया । वह भूल गया कि मछली केंचुए को निगल गई है, कांटा बिल्कुल खाली लटक रहा है । वह देख रहा था प्राची के आकाश की उस गोद को जिसमें बाल-सूरज अठखेलियाँ कर रहा था । अचानक उसके कानों ने किसी स्त्री के रोने की आवाज सुनी । वह चौंक उठा और इधर-उधर देखने लगा ।

सागर ने देखा कि चार-पाँच पुरुष एक युवती को घेरे लिये चले जा रहे हैं । वह रो रही है । इस पर उसे वे लोग कुछ कह रहे हैं जो सुन नहीं पड़ता । युवती पीछे लौटने का प्रयत्न करती है । फौरन ही वे लोग ढकेल कर उसे अपने बीच में कर लेते हैं । वह विवश हो जाती है और जोर-जोर से रोने लगती है । वह मन ही मन उन लोगों के प्रति क्रोध से भर उठा । उसके ज्ञान-तन्तु क्षणक्षणा उठे । उसने बंसी निकाल कर बाहर रख दी और एक झटके के साथ उठकर खड़ा हो गया ।

एक क्षण में ही सागर के मस्तिष्क में यह प्रश्न तेजी से घूम गया कि पुरुष स्त्रियों के साथ अन्याय क्यों करता है । उन्हें क्या इसीलिये सताता है कि वे अबला हैं और भीड़ प्रकृति की होती हैं । आखिर वे लोग कौन हैं जो इस बेचारी को इस तरह आस दे रहे हैं । ऐसा लगता है कि वे जो कुछ करने

जा रहे हैं, वह उसकी इच्छा के विरुद्ध और अपना मनमाना। लाचार नारी चली जा रही है रोती, कलपती; क्योंकि वह अन्याय के चक्र में घूम रही है। उसके आसू इन बेरहमों के पत्थर-दिलों को नहीं पिघला पाते। समझ में नहीं आता कि मामला क्या है !

बस ! एक क्षण तो सागर ने यह सोचा और दूसरे क्षण ही चल पड़ा उस दिशा की ओर जिधर युवती जा रही थी। वह तेजी से चला, लपका और फिर मन न माना तो दौड़ने लगा। अब स्थिति यह हो गई थी कि एक व्यक्ति उस युवती को पीट रहा था। शेष लोग अलग खड़े थे। युवती को सजा इसलिये दी जा रही थी कि वह बार-बार पीछे की ओर भागती थी। सागर ने जाकर उस आतताई का हाथ पकड़ लिया और युवती से बोला—
“तुम कौन हो ? कहाँ रहती हो ? ये लोग तुमको कहाँ लिये जा रहे हैं ?”

युवती जब तक सागर से कुछ कहे तब तक शेष चारों आदमी आग बबूला हो उसके पास आ गये और अपने साथी का हाथ छुड़ते हुए उनमें से एक कहने लगा—“आप कौन है बीच के काजी ? आप को किसने बुलाया ? जाइये, चले जाइये, आपको कोई हक नहीं है हम लोगों के बीच में बोलने का। जाइये। बस, अपना रास्ता नापिये। हम लोग शहर के नाम से नफरत करते हैं। तुम क्या जानो। यह खानदान की इज्जत का मामला है। आपके शहर वाले क्या जानें कि पर्दा क्या होता है और मरजाद (मर्यादा) किसे कहते हैं।”

सागर का खून तेजी के साथ खीलने लगा। वह गरम होकर बोला—“मामला खानदान का हो या इज्जत-आबरू का, इससे मुझे मतलब नहीं है। मुझे तो घुरा यह लग रहा है कि जो आप लोग इस बेचारी स्त्री के साथ पशुओं जैसा व्यवहार कर रहे हैं। आखिर.....।”

“आखिर-बाखिर कुछ नहीं बाबू ! जाओ, अपना काम देखो। हम लोगों के मुँह लगना अच्छा नहीं। हम इसे क्यों लिये जा रहे हैं, कहाँ लिये जा रहे हैं, यह बताने की जरूरत नहीं समझते। बस, भलाई इसी में है कि बापस चले जाओ और हमारी राह में बाधा न बनो।” यह उस आदमी

का कथन था जिसने युवती को पीटा था और सागर ने उसका हाथ पकड़ा था ।

सागर को यह सह्य नहीं हुआ; फिर भी वह न जाने क्या सोचकर चुप रहा और मन ही मन सोचने लगा कि आखिर वह कौन-सा रहस्य है जिसको वे लोग छिपा रहे हैं । जरूर कोई कहानी है इस युवती की । वह सिसकियाँ ले रही थी । सागर सामने खड़ा था और एक व्यक्ति उससे कह रहा था कि चल, चलती है या नहीं ? यह बाबू हम लोगों का कुछ भी नहीं कर सकता । ऐसे तो न जाने कितने राहगीर मिलेंगे । जैसे आयेंगे वैसे ही मुँह की खाकर चले जायेंगे ।

लोग आगे बढ़े । युवती को फिर ढकेल कर बीच में कर लिया । वह ढाढ़ मारकर रो दी । सागर यह देख नहीं सका । वह दौड़ा उसके पीछे और निकट जाकर पूछने लगा—“तुम बोलती क्यों नहीं ? मुझे कुछ बताती क्यों नहीं ? ये लोग जत्लाद हैं, तुम्हें मार डालेंगे । देखो तो, इनमें से किसी की भी आँख में शील नहीं है, ये इन्सानियत से परे हैं । बोलो । जबाब दो । मैं…………।”

“मैं के बच्चे, तेरी ऐसी की तैसी । वकील बना है, वकालत करता है । चला जा यहाँ से अगर अपनी खैर चाहता है । नहीं तो अभी तेरी जिरह और बहस सब निकालकर रख दी जायेगी । तू अकेला है और हम पाँच आदमी हैं ।” यह कह कर उनमें से एक मोटे-तगड़े जवान ने सागर को धक्का दिया । वह दूर जाकर गिरा । तब तक ये लोग आगे बढ़ गये और युवती के रोने की आवाज तेज हो गई । फिर अचानक बन्द हो गई । शायद किसी ने उसका मुँह दाब दिया था ।

चोट खाये हुए नाग की भाँति सागर तिलमिला कर उठा और तेजी से जा उस आदमी से भिड़ गया जिसने उसे ढकेला था। वह लाल-लाल आँखें करके नधुने फुलाता हुआ हाँपते स्वर में बोला—“इसे तो शराफत नहीं कहते। बात जबान से की जाती है। मारपीट करने का तो काम नीच लोगों का है। तुम्हें बताना होगा कि यह औरत कौन है और तुम इसको कहाँ लिये जा रहे हो।”

उस आदमी ने सागर के मुँह पर एक मुक्का मारा। उसका होंट कट गया और खून बहने लगा। तब तक दूसरा आदमी भी उस पर बाज-सा टूट पड़ा। वे दोनों मिलकर उसकी मरम्मत करने लगे। सागर ने जब अपने बचाव के लिये हाथ-पैर चलाये तो शेष तीनों व्यक्ति भी उस पर पिल पड़े। उन लोगों ने उसे गिरा दिया, फिर लातों तथा धूसों से उसकी मरम्मत करने लगे।

सागर पिट रहा था और उसके मुँह से बराबर यह आवाज आ रही थी कि कुछ भी करो मैं तुम लोगों को जाने नहीं दूँगा। बताओ! यह औरत कौन है? तुम लोग इसे क्यों सता रहे हो? लेकिन उसकी बात कोई नहीं सुनता। लोग उसे पीटने में जुटे थे। वह धूल से लथपथ हो रहा था। उसके मुँह से खून बह रहा था। युवती को मौका मिला, उसने देखा कि वे पाँचों शीतान उस युवक पर टूट पड़े हैं, उनका ध्यान मेरी ओर नहीं है। वह भागी वहाँ से सिर पर पैर रखकर।

युवती गिरती-पड़ती भाग रही थी। रास्ता ऊबड़-खाबड़ था। पाँचों आदमी सागर को कबूतर-सा दबोचे थे और वह फड़फड़ा रहा था बुरी तरह। सहसा उनमें से एक व्यक्ति की निगाह उधर गई जहाँ युवती खड़ी थी। वह चौंका और इधर-उधर देखने लगा। पीछे की ओर वह भागी चली जा रही थी। वह दोड़ा तेजी से और उसके दोनों हाथ पकड़ खींचता हुआ इधर ले आया जहाँ सागर बुरी तरह पस्त हो पड़ा था और लोग अब भी उसे नहीं छोड़ रहे थे।

सबेरे का पहला पहर था। डंगर चल रही थी। कुछ बटोहा इधर आ रहे थे। मारपीट होते देख वे इधर लपक आये और लोगों से सागर को छुड़ाकर अलग किया। सागर में इतनी शक्ति भी नहीं रह गई थी कि वह उठकर खड़ा होता या बैठता। बटोही पूछने लगे और उन लोगों में से जो अघेड़ था बतलाने लगा कि मैं इस औरत का ससुर हूँ। यह विधवा है। इसके माँ-बाप इसका दूसरा ब्याह कर रहे हैं। इसीलिये हम लोग इसे लिये जा रहे हैं। हमारे यहाँ रिवाज है कि बहू जिस घर में डोली पर बैठकर आती है, उस घर से फिर बाहर नहीं जाती, उसकी अर्थी ही निकलनी है। हम कनौजिया (कान्यकुब्ज) ब्राह्मण हैं, भइया। हमारे कुल में विधवा दूसरा ब्याह नहीं कर सकती। इससे खानदान में बट्टा लगता है।

युवती के ससुर की बातें डंगरोही सुन रहे थे। फिर अन्य लोगों ने भी पूछने पर उनको बतलाया कि यह युवक (सागर) व्यर्थ के लिये बीच में आ गया और आटे के साथ घुन की तरह पिस गया। भला बताओ, अगर हम लोगों की ज्यादाती होती तो इसके (युवती के) माँके के गाँव वाले साथ क्यों देते। वे विधवा विवाह के बिल्कुल खिलाफ हैं। इसके माँ-बाप 'उमा-उमा' चिल्लाते रहे और हमारी राह में बाधा बने रहे लेकिन गाँव वालों ने ही साथ दिया। तब हम किसी तरह इसको लेकर यहाँ तक आ सके हैं।

अब सागर ने सारी परिस्थिति समझ ली कि युवती का नाम उमा है। वह विधवा है और उसकी ससुराल वाले उसको बलात लिवाये जा रहे हैं। उसने यह भी जान लिया कि गाँव टीकमपुर उमा का पीहर है और कस्बा नवाबगंज उसकी ससुराल। बटोहियों से उमा की ससुराल वालों की बातें हो रही थीं। वह चुपचाप पड़ा था। उसको अपनी पीड़ा का तनिक भी बोध नहीं था। वह छटपटा रहा था केवल इसलिये कि एक अकेली मजबूर जान पर कितने आतताई संगीनें लिये खड़े हैं। उमा का क्या होगा? जरूर उसकी ससुराल में दुर्गति होगी। वह खून के आसुओं रोयेगी, लम्बी-लम्बी साँसें लेगी। गम खायेगी और आँसू पियेगी। इस तरह जिन्दा रहेगी वह जैसे बहेलिये के जाल में फँसा हुआ आजाद पखेरू कैद हो जाता है, जिन्दा रहते हुए भी वह जीवन्मृत हो जाता है।

सागर दुःखपूर्ण अन्तर्द्वन्द्व के प्रवाह में बह रहा था। और बटोही कह रहे थे उमा के समुद्र से, कि हाँ भइया इज्जत-आबरू बहुत बढ़ी चीज होती है। अभी इतना ज्यादा पाप नहीं बढ़ा है कि रांड (विधवा) ब्याह करे। तुमने अच्छा किया जो अपनी बहू को लिवा लाये। शहरों के लोग तो बिल्कुल ही भ्रष्ट हो गये हैं। जाओ ! तुम लोग अपनी राह जाओ। यह बाबू बेकार के लिये बीच में आ गया। इसको नहीं मालूम कि गाँव और कस्बे वाले दन्द-फन्द नहीं जानते। वे सीधी-सादी जिन्दगी बसर करते हैं। खैर, जैसा किया, वैसा पाया। तुम लोग जाओ ? और इसको यहीं छोड़ो। हम भी चलते हैं।

इस भाँति डगरोही चले गये और उमा को लेकर उसके समुद्र की मंडली भी आगे बढ़ी। उमा रोई इतनी तेजी से कि सागर का कलेजा काँप उठा। ज्यों-ज्यों वह आगे बढ़ रही थी, उसके रोने का स्वर मन्द पड़ता जा रहा था। सागर आँखें खोले देख रहा था आकाश की ओर। उसकी पलकें गीली थी। और न जाने कितना दुःख उमड़ रहा था उसके मानस-प्रदेश में। लगता था कि उसमें भूचाल आ गया है और उसकी स्थिति ढाँवाडोल हो उठी है।

सूरज के रथ के पहिये अपनी मंजिल आधी के करीब पूरी कर चुके थे। मतलब दोपहर होने को आ गई और सागर अब तक वहीं पड़ा था। इस बीच रास्ते में सन्नाटा रहा। उधर से कोई नहीं निकला। ऊपर चिड़ियाँ उड़ रही थीं। नीचे हवा चलती और कच्चे गलियारे की धूल नाचती हुई नजर आती। किन्तु सागर चिन्तन में खोया था। उसे वर्तमान परिस्थिति का तनिक भी बोध नहीं था। उसके मुँह से रह-रहकर साँसें निकल पड़ती थीं, गरम-गरम और लम्बी-लम्बी।

फैसे । आज के संसार को सबसे पहले मर्यादा का उदय चाहिये; क्योंकि वह अस्त होती जा रही है । छोटे बड़े राष्ट्रों की भाँति मनुष्य की अन्तर्नीति कुछ और चल रही है बाह्य कुछ और । यह धरती के पूनों के लिये बहुत ही लज्जास्पद है । व्यक्तिवादिता ने सार्वजनिकता और सहानुभूति को एकदम भुला दिया है । ईमान तिनका है और अधर्म तूफान । दोनों का संघर्ष आदि काल से चलता आया है, अब भी चल रहा है । लेकिन धरती पर धर्म जिन्दा है । इसीलिये अपने हर आक्रमण में तूफान हारता है और तिनके जीत जाते हैं ।

७८/२५६, अनवर गंज,
कानपुर

कमल शुक्ल

शरद ऋतु का मलोना प्रभात मुखरित हो रहा था। खंजन बोल रहे थे। पेड़ों की डालियों पर बैठे पक्षी अपना-अपना स्वतन्त्र गीत गाने में मगन थे। पूरब की ओर आकाश रक्ताभ हो रहा था, जैसे उस नीले सागर में कमल खिल रहा हो। सूरज निकल रहा था। उसकी स्वर्णिम रश्मियाँ जागरण तथा नवजीवन का संदेश लिये धरती पर उतर रही थी। वे खेल रही थी और हवा चल रही थी। मन-भावन सागर बँटा था एक तालाब के किनारे। उसके दूसरे तट पर बगुले उड़ रहे थे। दो-एक बैठे थे अपनी लम्बी चोंच फैलाये इस घात में कि मछली ऊपर आए, वह साँस लेने के लिये अपना सिर बाहर निकाले और उनका आहार बने। सागर की बंसी लग रही थी। उसमें काँटे के साथ नीचे आटे की गोली लटक रही थी और वह एकटक देख रहा था उस मोती जैसे निर्मल नीर की ओर। उस पर सुनहली किरणें पड़ रही थी और वह चमक रहा था।

पीछे छोटी लाइन और बड़ी लाइन की पटरियाँ बिछ रही थीं। एक ट्रेन लखनऊ से कानपुर की ओर आ रही थी। निकट ही छोटा-सा पुल था उसी तालाब पर; क्योंकि वह दूर तक लम्बा पतला-सा चला गया था। कुछ लोग इसे गंगा का सोता कहते हैं। इसका पानी कभी सूखना नहीं। हाँ, गर्मियों में कम जरूर पड़ जाता है। ईंटों के खम्भे कापे। सागर की निगाह पीछे की ओर मुड़ी। पुल पर से ट्रेन गुजर रही थी हहराहट भरा शोर करती हुई। सहसा बंसी टिकी। वह देखने लगा कि शायद मछली फँस गई है; लेकिन यह केवल भ्रम था। मछली फँसी नहीं, फँसते-फँसते रह गई। आटे की गोली पानी में घुल गई। सागर ने बंसी बाहर निकाली तथा निकट ही

रेंग रहे एक केचुए को पकड़ कांटे में अटका दिया और फिर बंसी लगाकर बैठ रहा ।

सागर इस समय बहुत प्रसन्न था । बदन पर वह अधिक कपड़े न लाद, जरूरतभर के पहने था । सर्दी उसे बिल्कुल नहीं लग रही थी क्योंकि जाड़ा गुलाबी था । दूर सामने कुछ खेतों के फासले पर एक अमराई थी । वह देखने में बहुत भली लगती; और ऐसे ही चारों ओर दृष्टि दौड़ाने पर उसे यह आभास होता कि वाकई दुनिया गोल है । हर तरफ से लगता कि पेड़ों ने एक दायरा बना रखा है । नील गायें दौड़ती हुई सामने से निकल जाती । कभी कोई हिरन चौकड़ी भरता हुआ नजर आता । सरसों के पीले, हरे, मुहावने खेत मन को मोह लेते । सागर का मन प्रसन्नता के अतीव आवेग से आलोड़ित हो उठा । वह प्रकृति के प्रति न जाने कितनी श्रद्धा से भर आया । वह भूल गया कि मछली केचुए को निगल गई है, कांटा बिल्कुल खाली लटक रहा है । वह देख रहा था प्राची के आकाश की उस गोद को जिसमें बाल-सूरज अठखेलियाँ कर रहा था । अचानक उसके कानों ने किसी स्त्री के रोने की आवाज सुनी । वह चौक उठा और इधर-उधर देखने लगा ।

सागर ने देखा कि चार-पाँच पुरुष एक युवती को घेरे लिये चले जा रहे हैं । वह रो रही है । इस पर उसे वे लोग कुछ कह रहे हैं जो सुन नहीं पड़ता । युवती पीछे लौटने का प्रयत्न करती है । फौरन ही वे लोग ढकेल कर उसे अपने बीच में कर लेते हैं । वह विवश हो जाती है और जोर-जोर से रोने लगती है । वह मन ही मन उन लोगों के प्रति क्रोध से भर उठा । उसके ज्ञान-तन्तु झनझना उठे । उसने बंसी निकाल कर बाहर रख दी और एक झटके के साथ उठकर खड़ा हो गया ।

एक क्षण में ही सागर के मस्तिष्क में यह प्रश्न तेजी से घूम गया कि पुरुष स्त्रियों के साथ अन्याय क्यों करता है । उन्हें क्या इसीलिये सताता है कि वे अबला हैं और भीष प्रकृति की होती है । आखिर वे लोग कौन हैं जो इस बेचारी को इस तरह त्रास दे रहे हैं । ऐसा लगता है कि वे जो कुछ करने

जा रहे है, वह उसकी इच्छा के विरुद्ध और अपना मनमाना । लाचार नारी चनी जा रही है रोती, कलपती; क्योंकि वह अन्याय के चक्र में घूम रही है । उसके आसू इन बेरहमों के पत्थर-दिलों को नहीं पिघला पाते । समझ में नहीं आता कि मामला क्या है !

बस ! एक क्षण तो सागर ने यह सोचा और दूसरे क्षण ही चल पड़ा उस दिशा की ओर जिधर युवती जा रही थी । वह तेजी से चला, लपका और फिर मन न माना तो दौड़ने लगा । अब स्थिति यह हो गई थी कि एक व्यक्ति उस युवती को पीट रहा था । शेष लोग अलग खड़े थे । युवती को मजा इसलिये दी जा रही थी कि वह बार-बार पीछे की ओर भागती थी । सागर ने जाकर उस आतताई का हाथ पकड़ लिया और युवती में बोला—
“तुम कौन हो ? कहाँ रहती हो ? ये लोग तुमको कहाँ लिये जा रहे हैं ?”

युवती जब तक सागर से कुछ कहे तब तक शेष चारों आदमी आग बबूला हो उसके पास आ गये और अपने साथी का हाथ छुड़ते हुए उनमें से एक कहने लगा—“आप कौन है बीच के काजी ? आप को किसे बुलाया ? जाइये, चले जाइये, आपको कोई हक नहीं है हम लोगों के बीच में बोलने का । जाइये । बस, अपना रास्ता नापिये । हम लोग शहर के नाम से नफरत करते हैं । तुम क्या जानो । यह खानदान की इज्जत का मामला है । आपके शहर वाले क्या जानें कि पर्दा क्या होता है और मरजाद (मर्यादा) किसे कहते हैं ।”

सागर का खून तेजी के साथ खिलने लगा । वह गरम होकर बोला—“मामला खानदान का हो या इज्जत-आवरू का, इसमें मुझे मतलब नहीं है । मुझे तो युग यह लग रहा है कि जो आप लोग इस बेचारी स्त्री के साथ पशुओं जैसा व्यवहार कर रहे हैं । आविर.....।”

“आविर-वाविर कुछ नहीं बाबू ! जाओ, अपना काम देखो । हम लोगों के मुँह लगना अच्छा नहीं । हम इसे क्यों लिये जा रहे हैं, कहाँ लिये जा रहे हैं, यह बताने की जरूरत नहीं समझते । बस, भलाई इसी में है कि बापस चले जाओ और हमारी राह में बाधा न बनो ।” यह उस आदमी

का कथन था जिसने युवती को पीटा था और सागर ने उसका हाथ पकड़ा था ।

सागर को यह सह्य नहीं हुआ; फिर भी वह न जाने क्या सोचकर चुप रहा और मन ही मन सोचने लगा कि आखिर वह कौन-सा रहस्य है जिसको वे लोग छिपा रहे हैं । जरूर कोई कहानी है इस युवती की । वह सिसकियाँ ले रही थी । सागर सामने खड़ा था और एक व्यक्ति उससे कह रहा था कि चल, चलती है या नहीं ? यह बाबू हम लोगों का कुछ भी नहीं कर सकता । ऐसे तो न जाने कितने राहगीर मिलेंगे । जैसे आयेंगे वैसे ही मुँह की खाकर चले जायेंगे ।

लोग आगे बढ़े । युवती को फिर ढकेल कर बीच में कर लिया । वह ढाढ़ मारकर रो दी । सागर यह देख नहीं सका । वह दौड़ा उसके पीछे और निकट जाकर पूछने लगा—“तुम बोलती क्यों नहीं ? मुझे कुछ बताती क्यों नहीं ? ये लोग जत्लाद हैं, तुम्हें मार डालेंगे । देखो तो, इनमें से किसी की भी आँख में शील नहीं है, ये इन्सानियत से परे हैं । बोलो । जबाब दो । मैं…………।”

“मैं के बच्चे, तेरी ऐसी की तैसी । वकील बना है, वकालत करता है । चला जा यहाँ से अगर अपनी खैर चाहता है । नहीं तो अभी तेरी जिरह और बहस सब निकालकर रख दी जायेगी । तू अकेला है और हम पाँच आदमी हैं ।” यह कह कर उनमें से एक मोटे-तगड़े जवान ने सागर को धक्का दिया । वह दूर जाकर गिरा । तब तक ये लोग आगे बढ़ गये और युवती के रोने की आवाज तेज हो गई । फिर अचानक बन्द हो गई । शायद किसी ने उसका मुँह दाब दिया था ।

चोट खाये हुए नाग की भाँति सागर तिलमिला कर उठा और तेजी से जा उस आदमी से भिड़ गया जिसने उसे ढकेला था। वह लाल-लाल आँखें करके नथुने फुलाता हुआ हाँपते स्वर में बोला—“इसे तो शराफत नहीं कहते। बात जबान से की जाती है। मारपीट करने का तो काम नीच लोगों का है। तुम्हें बताना होगा कि यह औरत कौन है और तुम इसको कहाँ लिये जा रहे हो।”

उस आदमी ने सागर के मुँह पर एक मुक्का मारा। उसका होंट कट गया और खून बहने लगा। तब तक दूसरा आदमी भी उस पर बाज-सा टूट पड़ा। वे दोनों मिलकर उसकी मरम्मत करने लगे। सागर ने जब अपने बचाव के लिये हाथ-पैर चलाये तो शेष तीनों व्यक्ति भी उस पर पिल पड़े। उन लोगों ने उसे गिरा दिया, फिर लातों तथा धूसों से उसकी मरम्मत करने लगे।

सागर पिट रहा था और उसके मुँह से बराबर यह आवाज आ रही थी कि कुछ भी करो मैं तुम लोगों को जाने नहीं दूँगा। बताओ! यह औरत कौन है? तुम लोग इसे क्यों सता रहे हो? लेकिन उसकी बात कोई नहीं सुनता। लोग उसे पीटने में जुटे थे। वह धूल से लथपथ हो रहा था। उसके मुँह से खून बह रहा था। युवती को मौका मिला, उसने देखा कि वे पाँचों शीतान उस युवक पर टूट पड़े हैं, उनका ध्यान मेरी ओर नहीं है। वह भागी वहाँ से सिर पर पैर रखकर।

युवती गिरती-पड़ती भाग रही थी। रास्ता ऊबड़-खाबड़ था। पाँचों आदमी सागर को कबूतर-सा दबोचें थे और वह फड़फड़ा रहा था बुरी तरह। सहसा उनमें से एक व्यक्ति की निगाह उधर गई जहाँ युवती खड़ी थी। वह चौंका और इधर-उधर देखने लगा। पीछे की ओर वह भागी चली जा रही थी। वह दीढ़ा तेजी से और उसके दोनों हाथ पकड़ खींचता हुआ इधर ले आया जहाँ सागर बुरी तरह पस्त हो पड़ा था और लोग अब भी उसे नहीं छोड़ रहे थे।

सवेरे का पहला पहर था। डंगर चले रही थी। कुछ बटोहा इधर आ रहे थे। मारपीट होते देख वे इधर लपक आये और लोगों से सागर को छुड़ाकर अलग किया। सागर में इतनी शक्ति भी नहीं रह गई थी कि वह उठकर खड़ा होता या बैठता। बटोही पूछने लगे और उन लोगों में से जो अधेड़ था बतलाने लगा कि मैं इस औरत का समुर हूँ। यह विधवा है। इसके माँ-बाप इसका दूसरा ब्याह कर रहे हैं। इसीलिये हम लोग इसे लिये जा रहे हैं। हमारे यहाँ रिवाज है कि बहू जिस घर में डोली पर बैठकर आती है, उस घर से फिर बाहर नहीं जाती, उसकी अर्थी ही निकलनी है। हम कनोजिया (कान्यकुब्ज) ब्राह्मण हैं, भइया। हमारे कुल में विधवा दूसरा ब्याह नहीं कर सकती। इससे खानदान में बढ़ा लगता है।

युवती के समुर की बातें डंगरोही सुन रहे थे। फिर अन्य लोगों ने भी पूछने पर उनको बतलाया कि यह युवक (सागर) व्यर्थ के लिये बीच में आ गया और आटे के साथ घुन की तरह पिस गया। भला बताओ, अगर हम लोगो की ज्यादाती होती तो इसके (युवती के) माँ के गाँव वाले साथ क्यों देते। वे विधवा विवाह के बिल्कुल खिलाफ हैं। इसके माँ-बाप 'उमा-उमा' चिल्लाते रहे और हमारी राह में बाधा बने रहे लेकिन गाँव वालों ने ही साथ दिया। तब हम किसी तरह इसको लेकर यहाँ तक आ सके हैं।

अब सागर ने सारी परिस्थिति समझ ली कि युवती का नाम उमा है। वह विधवा है और उसकी समुराल वाले उसको बलात लिवाये जा रहे हैं। उसने यह भी जान लिया कि गाँव टीकमपुर उमा का पीहर है और कस्बा नवाबगंज उसकी समुराल। बटोहियों से उमा की समुराल वालों की बातें हो रही थी। वह चुपचाप पड़ा था। उसको अपनी पीड़ा का तनिक भी बोध नहीं था। वह छटपटा रहा था केवल इसलिये कि एक अकेली मजबूर जान पर कितने आतताई संगीनों लिये खड़े हैं। उमा का क्या होगा? जरूर उसकी समुराल में दुर्गति होगी। वह खून के आँसुओं रोयेगी, लम्बी-लम्बी साँसें लेगी। गम खायेगी और आँसू पियेगी। इस तरह जिन्दा रहेगी वह जैसे बहेलिये के जाल में फँसा हुआ आजाद पखेरू कैद हो जाता है, जिन्दा रहते हुए भी वह जीवन्मृत हो जाता है।

सागर दुखपूर्ण अन्तर्द्वन्द्व के प्रवाह में बह रहा था। और वटोही कह रहे थे उमा के समुद्र में, कि हाँ भइया इज्जत-आबरू बहुत बढ़ी चीज होती है। अभी इतना ज्यादा पाप नहीं बढ़ा है कि राँड़ (विधवा) ब्याह करे। तुमने अच्छा किया जो अपनी बहू को लिवा लाये। शहरों के लोग तो बिल्कुल ही भ्रष्ट हो गये हैं। जाओ ! तुम लोग अपनी राह जाओ। यह बाबू बेकार के लिये बीच में आ गया। इसको नहीं मालूम कि गाँव और कस्बे वाले दन्द-फन्द नहीं जानते। वे सीधी-सादी जिन्दगी बसर करते हैं। खैर, जैसा किया, वैसा पाया। तुम लोग जाओ ? और इसको यहीं छोड़ो। हम भी चलते हैं।

इस भाँति डगरोही चले गये और उमा को लेकर उसके समुद्र की मंडली भी आगे बढ़ी। उमा रोई इतनी तेजी से कि सागर का कलेजा काँप उठा। ज्यों-ज्यों वह आगे बढ़ रही थी, उसके रोने का स्वर मन्द पड़ता जा रहा था। सागर आँखे खोले देख रहा था आकाश की ओर। उसकी पलके गीली थी। और न जाने कितना दुख उमड़ रहा था उसके मानस-प्रदेश में। लगता था कि उसमें भूचाल आ गया है और उसकी स्थिति डाँवाडोल हो उठी है।

सूरज के रथ के पहिये अपनी मंजिल आधी के करीब पूरी कर चुके थे। मतलब दोपहर होने को आ गई और सागर अब तक वहीं पड़ा था। इस बीच रास्ते में सघाटा रहा। उधर से कोई नहीं निकला। ऊपर बिड़ियाँ उड़ रही थी। नीचे हवा चलती और कच्चे गलियारे की धूल नाचती हुई नज़र आती। किन्तु सागर चिन्तन में खोया था। उसे वर्तमान परिस्थिति का तनिक भी बोध नहीं था। उसके मुँह से रह-रहकर सासें निकल पड़ती थी, गरम-गरम और लम्बी-लम्बी।

बारह बजे की ट्रेन से कुछ मुसाफिर उतरे जो टीकमपुर की ओर जा रहे थे। वे उसी रास्ते से गुजर रहे थे, जहाँ धूल-धूसरित सागर पड़ा था। एक ने टोका, दूसरे ने मजाक किया और तीसरा हँसा कि यह सूट-बूट धारी बाबू साहब गलियारे में कैसे पड़े हैं ? मालूम होता है कि इनको मिरगी आ गई है। ऐसे ही एक दूसरा उजड़ु देहाती बोल उठा, “हाँ यार, कहते तो ठीक हो। मिरगी आने पर जूता सुंधाया जाता है। सुंधाओ बाबू साहब को, अभी उठकर बैठेंगे।”

सागर ने राहगीरों की ये बातें सुनी तो वह हिम्मत करके उठा और किसी तरह काँखता हुआ खड़ा हुआ। उसने उन लोगों की ओर देखा भी नहीं। धीरे-धीरे तालाब की ओर चलने लगा। वह आगे बढ़ रहा था और उसके पीछे भद्दी हँसी गूँज रही थी। देहाती कह रहे थे कि देखा, कंसी रही। जूते का नाम सुनते ही बाबू साहब की मिरगी अच्छी हो गई। देखो, जा रहे हैं धूल झाड़ते हुये।

सागर ने उस ओर ध्यान नहीं दिया। वह चलता गया और दो ही चार मिनट में वहाँ आ गया जहाँ प्रातः बंसी लगाये बैठा मछली पकड़ रहा था। उसने देखा, तालाब के तट पर सफेद और काले बगुले इधर-उधर डोल रहे हैं ? और वही किनारे रेंगते हुए केचुए उनका घास बन रहे हैं। फिर उसने नजर दौड़ाई—अपने सामान को देखा। न वहाँ बंसी थी और न मछली पकड़ने का शेष सामान ही। वह चौंका नहीं और न उसे ताज्जुब ही हुआ। उसके भीतर के मानव ने उससे कहा कि भूल जाओ सागर कि वह सामान तुम्हारा था। आज के भूखे, नंगे और अधूरे संसार में आदमी का ईमान पानी से भी पतला हो गया है। कोई भी चीज कही पड़ी नहीं रह सकती। उसके हजारों ग्राहक हो जाते हैं।

सागर ने उस ओर से उपेक्षापूर्वक मुँह मोड़ लिया और मन ही मन सोचा कि चलूँ, सीधा सड़क की ओर चलूँ। पैदल तो चलना मुश्किल है। वहाँ

कोई सवारी मिल जायेगी, जल्दी घर पहुँच जाऊँगा। घर में सब लोग हैरान होंगे। वे सोच रहे होंगे कि आखिर मैं रह कहाँ गया। ऐसा सोच वह सड़क की ओर चलने लगा। रास्ते में भी उसका अन्तर्द्वन्द्व साथ नहीं छोड़ रहा था। वह हैरान था। उसमें मनन-मंथन चल रहा था। उमा का चित्र बार-बार सामने आ जाता और उसकी सिसकियाँ उसके कानों में भर-भर कर रह जाती। सहसा ट्रेन की सीटी सुनाई दी। रेलवे क्रॉसिंग बहुत पीछे छूट चुका था। बाँई कलाई पर उसकी दृष्टि गई। रिस्टवाच साढ़े बारह बजा रही थी। वह सजग हो तनिक जल्दी-जल्दी चलने लगा।

यद्यपि सागर की देह में फुड़िया जैसा दर्द हो रहा था। उसका अंग प्रत्यंग बुरी तरह दुख रहा था; लेकिन साहस उसे आगे बढ़ाये लिये चला जा रहा था। सामने तारकोल की काली सड़क लोट रही थी नागिन-सी। उस पर एक ओर मोटर-ट्रक दौड़ रहा था। ओर दूसरी ओर आ रही थी रोडवेज की एक बस। बस नियन्त्रित अवस्था में चल रही थी, ओर ट्रक दौड़ रहा था तूफान की तरह। दोनों में सहसा टक्कर हो गई। बस सड़क के नीचे एक गड्ढे में जा गिरी और ट्रक चालक भाग गया ट्रक छोड़कर। सागर उसकी ओर दौड़ना चाहता था; लेकिन विवश था। उसके मन ने कहा कि न जाने कितने मरे होंगे और कितने घायल हुए होंगे। ये ट्रक चालक बड़ी लापरवाही करते हैं, आँखें मूंदकर गाड़ी चलाते हैं।

सड़क पर जब सागर पहुँचा तो देखा वहाँ एक अच्छी-खासी भीड़ लग रही है। आने, जाने वाली सवारियाँ रुक रही हैं, लोग उनसे नीचे उतर रहे हैं, मजमा बढ़ रहा है। क्या हुआ? एक्सीडेंट हो गया। ट्रक और बस की टक्कर हो गई। बस गड्ढे में गिर पड़ी और कई यात्री घायल हो गये। यह सब सुना सागर ने। वह खड़ा-खड़ा देखता रहा और लोग घायलों को लाकर एक पेड़ के नीचे लिटाने लगे। सागर का हृदय मोम बनकर पिघल उठा। उसकी आँखों से करुणा के आँसू बरस पड़े। फिर वह वहाँ खड़ा न रह सका। एक रिक्शा शहर की ओर जा रहा था उसी पर बैठ गया। रास्ते में वह उमा के प्रति सोचता रहा और विचार करने लगा उन लोगों

का भी जिन्होंने उसे बेरहमी से पीटा था। उसे ग्वाल आया उन राहगीरो का जिन्होंने उमा के समुर का समर्थन कर उसके भाग्य का फैसला किया था। इसके बाद सागर को याद आये वे मनहूस बटोही जो उसकी खिल्ली उड़ा रहे थे और कहते थे कि बाबू साहब को मिरगी आ गई है, इन्हे जूता सुंघाओ।

सूरज अब आकाश के बीचों-बीच आ तेजी से चमक रहा था। उसकी किरणे बिल्कुल सीधी पड़ रही थी। रिक्शा गंगा का पुल पार कर रहा था। सागर ने भगवती गंगा के हाथ जोड़े, झुककर प्रणाम किया। तभी अचानक उसकी दृष्टि जा पड़ी, जलती हुई कुछ चिताओं पर जिनमे हाड और मांस का आदमी जल रहा था। रिक्शा आगे बढ़ रहा था और सागर सोच रहा था कि मनुष्य का अन्त कितना भयावह होता है।

सागर रिक्शे पर बैठा न जाने कैसे-कैसे विचारों में उलझ रहा था। उसका चित्त अशान्त था। वह कभी कुछ सोचता और कभी कुछ। रिक्शा उसके बताये अनुसार मालरोड पर आ चुका था। मरी कम्पनी के पास रिक्शे वाले ने उसमे पूछ लिया कि हाँ, मालरोड पर कहाँ उतरना है, बाबू ?

जबाब में सागर कुछ नहीं बोला। वह अपनी उधेड़-बुन में व्यस्त रहा। तब रिक्शे वाले ने अपना प्रश्न फिर दोहराया। अब सागर को चेत हुआ। उसने सामने दूर तक दृष्टि दीड़ी, फिर धीरे-से बोला—“हाँ, हम फूलबाग के दूसरे फाटक के सामने उतरेंगे।”

रिक्शा चल पड़ा। थोड़ी देर बाद सागर का घर आ गया। उसकी छोटी बहन कान्ता दरवाजे पर खड़ी थी। उसको देखते ही खुशी से उछल पड़ी और दौड़कर पास आ गले से लिपट गई। उसके मुँह से उल्लास भरे ये शब्द निकले—“भइया आ गये।”

लेकिन यह क्या ! कान्ता का उल्लास दूसरे क्षण ही चौक गया और वह घबड़ाहट से भर गई। भाई के कपड़े अस्त-व्यस्त और देह धूल से भरी देख वह एकदम सप्ताटे में आ गई। वह व्यग्र स्वर से पूछने लगी—“यह क्या हुआ भइया, तुम्हारी हालत क्या हो गई है ? कहीं गिर पड़े थे क्या ?”

सागर ने रिक्शे वाले को पैसे दिये और वह चलता बना; तभी कान्ता जल्दी-जल्दी हमारे प्रश्न भी करने लगी—“अरे, बसी कहाँ भूल आये भइया ? अब मछली कैसे पकड़ोगे ? आज तुम्हें क्या हो गया है ? बोलते क्यों नहीं ?”

अब सागर मुस्कराया। उसके चहरे पर गम्भीरता की छाप लग गई। वह धीरे-से कान्ता की ओर देखता हुआ बोला—“कुछ नहीं कान्ता ! कुछ भी नहीं हुआ। चलो, अन्दर चलो। माँ राह देना रही होगी। हाँ, और बाबूजी ने खाना अभी खाया या नहीं ? सचमुच आज मुझे बहुत देर हो गई।”

कान्ता कुछ भी समझ नहीं पाई। वह दूने आश्चर्य में पड़ गई। वह पृच्छनी रही और सागर उसका हाथ पकड़ जल्दी-जल्दी चौखट की ओर बढ़ने लगा।

४

नागराज को जितना गर्व होता है अपनी मणि पर, ठीक उतना ही दर्प और वैसा ही अभिमान था बाबू श्यामलाल को कि उनके घर में उनका पुत्र सागर कोहनूर हीरा है जिसकी चमक अन्य हीरों से चौगुनी है। जिसे देखो वही उसकी तारीफ करता है कि लड़का बहुत नेक है। जितना प्यार वह अमीरों से करता है गरीबों से भी उससे कम नहीं। उसकी निगाह में सब एक हैं, न कोई छोटा और न कोई बड़ा। वह पैसे का गुलाम नहीं, उससे उपेक्षा करता है। वह सच्चाई का एक सवूत है और जीवन का एक पुतला। वह अंधेरे में उजाला है, दिन का मूरज और रात का चाँद। बहुत ही होनहार है। दुनिया के दुखदरद को अपनी पीर समझता है।

ठीक बाप की तरह ही माँ बसुमती भी पुत्र पर बलि-बलि जातीं। वह उसकी बलायें लेते नहीं थकती और जब देखो तब कहा करती—“न जाने कैसे होते हैं वे लोग जो कहते हैं कि मेरा लड़का कहा नहीं मानता, राह-राह नहीं चलता। मेरा सागर जानता ही नहीं कि चालाकी किस चिड़िया का नाम है। नेकी कर और कुर्यें में डाल उसकी आदत में दाखिल है। तब फिर भला मुझे और उसके बाप को उससे शिकायत क्यों होने लगी।”

और सागर था भी बहुत ही सरल, बहुत ही नरम और अतीव सुकुमार। एम० ए० की डिग्री हासिल करने पर भी लगता था कि जैसे वह कुछ जानता ही नहीं। बाप कन्ट्रेक्टर था। उसका बहुत बड़ा व्यापार था पेन्ट, वार्निश और सीमेन्ट आदि के रँगों का। आमदनी का और-छोर न था। घर में पैसा ही पैसा दिखलाई देता। वह आगे पढ़ा नहीं और न कुछ सोचा भविष्य के लिये ही। न जाने कैसा था उसका मन और उसकी रुचि कि उसे परोपकार में ही परम आनन्द मिलता। आत्म संतोष ही उसकी तुष्टि का प्रतीक था। उसकी वाणी, उसके कार्य और उसकी गतिविधि सभी कुछ निराला था। वह एक अनोखा था, अपने में एकदम बिल्कुल नया। मौन से उसे प्यार था, शान्ति ही उसका सुख था। तभी वह कही नहीं जाता, अपने घर में ही रहता। एकान्त सेवन उसकी सबसे बड़ी हाँबी थी।

यदि कहो कि सागर लापरवाह था अपने कर्त्तव्य के प्रति तो यह बात नहीं। वह घर के आवश्यक कार्य भी करता। बाप का भी हाथ बटाता दोस्त-मित्रों से भी मिलता। नाते-रिश्तेदारों को नाराज होने का कभी मौका नहीं देता। उसके निकट सम्पर्क का प्रत्येक व्यक्ति उससे संतुष्ट था, प्रसन्न था। और वह था भी एक ही विश्वासपात्र, पराये माल को ठीकरी के समान समझता उसके आगे सगे-सनेही-सम्बन्धियों के हाथ फँलते। वह इन्कार नहीं कर पाता, यह उसकी इंसानियत का बहुत ऊँचा दर्जा था।

सागर अध्ययन में भी खूब रुचि रखता। मनोविज्ञान उसका बहुत ही प्रिय विषय था। फ्रायड के साहित्य पर उसकी अडिग आस्था थी। इसीलिए वह प्रत्येक कार्य को खूब सोच-विचार कर करता, कभी जल्दी नहीं

करता। वह किसी से नहीं उलझता। आदमी की पूरी बात पहले सुन लेता, उसके बाद जवाब देता। दूसरों के लिये अपने को खतरे में डालना, उसके लिये एक साधारण-सी बात थी।

जब सागर कान्ता के साथ अन्दर आया तो देखते ही बसुमती एकदम चौककर घबड़ा गई और पास आ उसे छाती से लिपटा व्यस्त स्वर में पूछने लगी—“यह क्या हालत बना लाया है, सागर? कैसे? यह सब क्या हुआ? आज बहुत देर हो गई। कहीं...।”

“कुछ नहीं माँ! कुछ नहीं।” कहता हुआ सागर धम्म से चारपाई पर बैठ गया और कान्ता उसके सामने खड़ी हो गई।

तभी निकट खड़ी बसुमती उसके सिर पर हाथ फेरती हुई जोर देकर पूछने लगी—“सागर, किसी से झगड़ा कर लिया क्या? बोल! बोलता क्यों नहीं? मैं...।”

बसुमती की बात बीच में ही रह गई; क्योंकि बाबू श्यामलाल भी वहाँ आ गये थे। उन्हें भी चौकना पड़ा और वे भी पूछने लगे। सागर कहने लगा—“न पूछो बाबूजी कि मेरी यह हालत कैसे हुई? सुनते ही मुझे दुनिया के दुखदद से सन्यास लेने का उपदेश देने लगोगे। आज मैंने वह देखा और वह अनुभव किया जो विचार और धारणा आदमी को संसार से विरक्त कर सकती है। मैंने देखा कि आदमी, आदमी ही नहीं, जानवर भी नहीं! वह राक्षस बन गया है। उसकी सारी प्रवृत्तियाँ आसुरी हो गई हैं।”

बाबू श्यामलाल चारपाई पर बैठ गये। बसुमती खड़ी की खड़ी रही और कान्ता भाई के मुँह को देख रही थी। वह कानों से सुन रही थी कि वह क्या कहता है। सागर धीरे-धीरे बता रहा था उमा की कहानी।

श्यामलाल और बसुमती दोनों उसे समझाने लगे। अलगू को बुलाया गया। वह आकर सागर के कपड़े उतारने और बूट खोलने लगा। फिर कुछ थोड़ा-सा खा-पीकर सागर जब लेटा तो तीसरा पहर हो रहा था। बाबू श्यामलाल ने डाक्टर बुलवाया था। वह उस समय कहीं विजिट पर गया था दूर। अब उसकी कार का हॉर्न बजा और वे उसको अन्दर लिवा लाये।

डाक्टर साहब को देखते ही सागर हँस पड़ा और बाप से बोला—
 “अरे बाबूजी, आपने डाक्टर साहब को तकलीफ क्यों दी ? मैं कोई बीमार हूँ क्या ? मैं तो भला-चंगा हूँ।”

इस पर बाप के बोलने से पहले ही बसुमती कहने लगी—“राम ! राम ! इतनी चोट आई है और लड़का कहता है कि मैं भला चंगा हूँ । मैं सच कहती हूँ कि इसे तनिक भी मोह नहीं है अपनी देह का । बिना मतलब आग में जाकर कूदता है । आदमी भलाई करता है; लेकिन अपनी जान तो नहीं दे देता ।”

माँ की यह बात सुन सागर हँस पड़ा और हँसते-हँसते बोला—
 “मेरी माँ तो मुझे बच्चा ही समझती है । मैं…… ।”

“और कोई तू बूढ़ा हो गया है क्या ?” बाबू श्यामलाल की इस बात ने सबको हँसा दिया । थोड़ी देर बाद डाक्टर साहब चले गये । माँ-बाप सागर को न जाने कितनी देर तक समझाते रहे कि वह ऐसा दुःसाहस भविष्य में कभी न करे जिससे व्यर्थ के लिये आफ़त में पड़े और देह की छीछा-लेदर हो ।

×

×

×

यद्यपि सागर अहिंसा का पुजारी था; लेकिन फिर भी उसकी दो आदतें बहुत ही विचित्र थी जो उसे हिंसक और अहिंसक दोनों के बीच में लाकर खड़ा कर देतीं । मछली पकड़ने का उसको बहुत बड़ा शौक था । दूसरे नित्य चिड़ीमार मुहल्ले में जाना, वहाँ पिंजड़े में कैद पखेरुओं को खरीदना और उन्हें आजाद कर देना । इस समय उसके साथ कान्ता भी होती । चिड़िया उड़ाने का उसे भी बड़ा चाव था । मछली पकड़ते देख कर उसके लिये यही कहा जाता कि यह माँसाहारी है; लेकिन ऐसा नहीं । वह शाकाहारी था परले सिरे का । उसके मकान में बाहर के बड़े हॉल में संगमरमर के आँगन के बीच एक फव्वारा था । उसमें मछलियाँ तैरा करतीं और सागर उनकी संख्या बढ़ाता रहता । वह पकड़ता छोटी-छोटी सुन्दर और आकर्षक

लगने वाली मछलियाँ । काँटे में फँसी अन्य मछलियों को वह उसी समय मुक्त कर देता था ।

सागर के विचारों से बहुत कुछ मिलते-जुलते विचार थे कान्ता के । यद्यपि वह अभी तेरह वर्ष की ही थी; लेकिन थी बड़ी चंचल और वाचाल । वह भाई के साथ ही साथ रहती । सागर भी उसे अतीव स्नेह करता । वह उसकी बात कभी नहीं टालता ।

ऐसी थी सागर की दुनिया । सभी ओर सुख था, सभी ओर समृद्धि; लेकिन एक बात सबको खलती थी कि बाबू श्यामलाल का भतीजा शेखर इन्सानियत से बहुत परे जा रहा था । अक्सर जब घर में उसकी चर्चा चलती तो सभी को अफसोस होता और वे लम्बी-लम्बी साँसे लेने लगते ।

५

धीरे-धीरे लगभग तीस दिन और तीस रातें बीत गईं । सागर उमा को नहीं भूला । उसे जब उसकी दयनीय स्थिति का स्मरण हो आता तो वह मन ही मन व्याकुल हो जाता और सोचने लगता कि संसार से अन्याय का अन्त कैसे किया जाये । यह कुछ समझ में नहीं आता, अक्ल हैरान है । मुक्त धरती पर हर आदमी को जिन्दा रहने का अधिकार है । किसी की आजादी में दखल देना अपने सिर पर पाप मोल लेना है । यही पाप की गठरी जब भारी हो जाती है तो उठाये नहीं उठती । आदमी थक जाता है और वह गिर जाता है मुँह के बल । अन्याय मनुष्य की सबसे बड़ी हार है और न्याय उसकी सबसे बड़ी जीत । पता नहीं उमा का क्या हुस्न अनुमान से यही जाना जा सकता है कि उसे बहुत कष्ट होगा । वह दैत्यों के

जबड़ों के बीच में फँस गई है। उसकी जिन्दगी अब उसकी नहीं रही। वह मौत के मुँह में है। दिया किसी समय भी बुझ सकता है।

जीवन में बहुत-सी ऐसी घटनायें सामने आती हैं जो भुलाई नहीं जा सकती, जिन्दगी भर याद रहती हैं। उमा की घटना भी सागर के लिये ऐसी ही थी। उसकी कहानी उसके मर्म को छू लेती; तब सागर का अन्तर कचोट उठता और वह मन ही मन अन्याय के प्रति खीझ जाता। उनका अस्थिर मन उससे कहने लगता कि स्थायी विश्व-शान्ति होने में अभी बहुत देर है। अन्याय अपनी चरम सीमा पर है। मनुष्य-मनुष्य का दुश्मन हो रहा है। लोग दूसरों की परख करते हैं; मगर अपने को पहचानते तक नहीं।

पूस का महीना था। बाहर लॉन पर धूप बिछ रही थी हरी दूब पर। वहीं दो मृगछालों पर बैठे थे कान्ता और सागर। वे एक साप्ताहिक पत्र को देख रहे थे। धूप लग रही थी बहुत भली। सहसा सागर का ध्यान बदला और अखबार बन्द कर वह कान्ता की ओर उन्मुख हो पूछने लगा—“साढ़े नौ बज रहे हैं और तुम अब तक तैयार भी नहीं हुई, जाओ खाना खाओ। कालेज की बस आने ही वाली होगी।”

कान्ता ने मुँह बना लिया और उठकर धीरे-धीरे वहाँ से चल दी। अभी वह लॉन से बाहर ही आई थी कि पोस्टमैन आता दिखाई दिया। वह रुक गई और फिर पहुँच गई सागर के पास। पोस्टमैन सागर को डाक देकर वापस लौट पड़ा और वह चिट्ठियाँ देखने लगा। अचानक उसका ध्यान कान्ता की ओर गया। वह उसकी ओर देखने लगा। कुछ कहना चाहता था कि इस बीच चिट्ठियों में से एक निमन्त्रण पत्र निकल पड़ा। उसका रंग केसरिया था और ऊपर गणेशजी का चित्र बना था। उसने निमन्त्रण-पत्र उसकी ओर बढ़ा दिया और मीठी भत्सना करता हुआ स्नेह पगे स्वर में बोला—“अरे! तू फिर आ गई। सच कहता हूँ कि अब तू बहुत ढीठ हो गई है, कान्ता। अच्छा, ले देख यह निमन्त्रण कहाँ से आया है।”

कान्ता भाई की बात सुनकर मुस्करा पड़ी और जल्दी-जल्दी लिफाफा खोल कांड निकाल पढ़ने लगी। वह पढ़ रही थी। उसके चहरे का रंग

बदलता जा रहा था। हँसी की रेखाये उसके मुख पर खिचती और वह मन ही मन प्रसन्नता के अतीव आवेग से भर रही थी। वह पुलकित होती हुई पुनः बैठ गई मृगछाले पर और प्रसन्न मुद्रा में भाई के कंधे पर सिर रखती हुए दुलार भरे स्वर में कहने लगी—“भइया ! गोपाल बाबू का ब्याह है। मैं भी चलूँगी। देखो ताऊ जी ने इसके पीछे अपने हाथ से लिख दिया है कि सागर कान्ता को अपने साथ जरूर लाना। हाँ ! भइया ! मैं तुम्हें इन्कार नहीं करने दूँगी, जरूर चलूँगी।”

सागर ने निमन्त्रण कान्ता के हाथ से ले लिया और उस पर निगाह दौड़ाता हुआ उपेक्षित मुद्रा में बोला—“जाने की जिद पहले करने लगी। यह नहीं देखा और न बतलाया कि ब्याह कब है और बरात कहाँ जा रही है ?”

“अरे ! हाँ ! वह तो मैं भूल ही गई। यही बसन्त पंचमी को, मतलब फरवरी के पहले हफ्ते में, तारीख तीन है। हाँ ! तो क्या कहते हो भइया ?”

“कहना क्या है। तैयारी पक्की है तेरी। लो ! देखो ! सामने कालेज की बस आ रही है और तुम अब तक यहीं खड़ी हो।” कान्ता की बात सुन सागर बीच में ही बोल उठा था। तब तक बस बिल्कुल करीब आ गई और कान्ता भाई के हाथ से निमन्त्रण ले यह कहती हुई वहाँ से दौड़ पड़ी—“बस ! अभी तैयार हुई, दो मिनट लगेंगे।”

सागर अपनी चंचल बहिन की गतिविधि पर मुग्ध होकर रह गया। बस का हार्न बजता रहा। कान्ता उन्हीं पँरों वापस आ जल्दी से उसमें बैठ गई। बस धीरे-धीरे आँखों के सामने से ओझल होती जा रही थी और सागर सोच रहा था कान्ता के प्रति कि उसमें कितना सारल्य है। वह कितनी दुलारी है घर में सबकी। मैं यह भी जानता हूँ कि वह अच्छे घर में ब्याही जायेगी। बड़े घर की बेटा बड़े घर की बहू बनकर जायेगी। लेकिन तत्पश्चात् उसकी कोई नहीं जानता। लड़की पराया घन होती है। मैंके के बाद उस पर

जब ससुराल का हक हो जाता है तो माँ-बाप के लिये वह एक पराई अमानत बन जाती है। यही तो हुआ था उमा के साथ। एक उमा है, एक कान्ता। एक समाज के विधान में आ चुकी है, बिना किसी अपराध के प्रताड़ना पा रही है और दूसरी है जो अभी स्नेह की छाया में पल रही है।

गोपाल एम० ए० कर चुका था। वह लखनऊ विश्वविद्यालय का एक रिसर्च-स्कालर था। इस समय उसके पिता लखनऊ में रह रहे थे। यहाँ उनका कपड़े का बहुत बड़ा कारबार था। इसके पहले वे कानपुर में रहते थे वही सागर के पड़ोस में। तब उनकी थोक कपड़े की एक बहुत बड़ी दूकान थी नौघड़े में। लोग उन्हें बजाज जी के नाम से पुकारते थे। उनका पूरा नाम था शान्तिस्वरूप। लखनऊ में अधिकांश लोग उन्हें शान्तीबाबू कहकर सम्बोधित करते। हज़रत गंज में उनकी दूकान थी, और मकान था कैसर बाग में।

गोपाल अवस्था में सागर से एक ही वर्ष छोटा था। दोनों साथ-साथ खेले और पढ़े थे। योजना यह बनी कि बाबू श्यामलाल एक दिन के लिये जायेंगे बढ़ार वाले दिन और सागर तथा कान्ता दोनों ब्याह के पहले जायेंगे फिर उसके बाद आयेंगे।

कान्ता और सागर दो फरबरी को प्रातः की ट्रेन से लखनऊ के लिये रवाना हुये। यह एक्सप्रेस ट्रेन थी आगरा-फोर्ट लखनऊ। केवल उल्लाव में रुकी इसके बाद का स्टाप चारबाग लखनऊ था। उल्लाव में जब ट्रेन छूटी तो चलती गाड़ी में एक सूट बूट धारी बाबू साहब डन्डे से लटक गये और ऊपर चढ़ आये। बात की बात में वे अन्दर आ गये। यह सेकन्ड क्लास का डिब्बा था। कान्ता और सागर के अतिरिक्त एक और बृद्ध मारवाड़ी दम्पति बैठे थे। आपस में उनका राय मशबरा चल रहा था कि रोजगार में घाटो ही घाटो होय रह्यो है और घर में छोटी ऐसी है जो आँखी मूँदिके चलति है, मन मानो खर्च करति है। सागर की दृष्टि प्लेटफार्म पर थी और कान्ता झील रही थी सन्तरा। वह उस आगन्तुक को देखते ही जोर से उछल पड़ी और सागर का

कन्धा हिलाती हुई बोली—“देखो भइया, शेखर दादा आ गये । अब मत जाने देना इन्हें ।”

सागर शेखर की ओर देखने लगा और कान्ता उसके वक्ष से जाकर लग गई । वह रूठे स्वर में कहने लगी—“शेखर दादा जाओ मैं तुमसे नहीं बोलती । तुम कभी घर नहीं आते हो ।”

शेखर सागर के पास आकर बैठ गया । सागर ने उसके चरण छुये । उसने उसे गले से लगा लिया और फिर कान्ता की शिकायत दूर करता हुआ भीठे लहजे में बोला—“अब मैं अपनी रानी बिटिया को कभी नाराज नहीं होने दूँगा । वह जो कहेगी, करूँगा ।”

“ऊँ ! ऊँ ! नहीं दादा ! तुम ऐसे ही कहते हो । मैं तुम्हें नहीं जाने दूँगी ।”

कान्ता की इस बात पर सागर भी हँस पड़ा और बोला—“हाँ शेखर दादा ! कान्ता ठीक कहती है आपका तो पता ही नहीं रहता है । न कभी आते हैं और न कोई चिट्ठी देते हैं । इधर आजकल क्या उन्नाव में ही रहना हो रहा है ? कहाँ चल रहे हो ? गोपाल के ब्याह का निमन्त्रण तो मिला होगा ?”

शेखर को मौका मिल गया । वह सागर की अन्य बातों का जवाब न दे फौरन ही बोल उठा—“अरे वही तो मैं भी चल रहा हूँ । बरात कल उठ रही है न ? चाचा जी नहीं जा रहे हैं क्या ?”

“वे कलेवा वाले दिन जायेंगे, और क्या हाल चाल हैं ? कौसा है आपका बिजनेस जो हर समय इधर-उधर दौड़ता रहता है । अरे कहीं एक ठिकाने बैठिये । बाबूजी ने कितनी बार कहा कि आप कानपुर में आकर रहिये, घर के काम में उनका हाथ बटाइये, लेकिन आप हमेशा अपने मन की करते हैं, दूसरे की सुनते ही नहीं ।”

शेखर था बड़ा ही वाक्पटु । वह जैसा अबसर देखता अपने को वैसा ही बना लेता । वह कहने लगा सागर की पीठ पर स्नेह भरा हाथ बपयपाकर “मान गया सागर, तुम भी एक ज्ञानी पंडित से कम नहीं । चाचा और चाची

की ही तरह तुम भी उपदेश देते हो। How lucky I am. (कितना खुश किस्मत हूँ मैं) मेरे अपने मुझे कितना चाहते हैं।”

इस तरह सागर, शेखर और कान्ता में बातें चल रही थी। ट्रेन अपनी पूरी रफ्तार में दौड़ रही थी। छोटे-छोटे स्टेशन पीछे छूटते जा रहे थे। अभोसी का स्टाप आ गया। गाड़ी नहीं रुकी, चलती रही। और कान्ता स्वयं अपने आप ही जोर से चिल्ला पड़ी—“बस ! लखनऊ आ गया। यह अभोसी है। सामने आई० एम० एस० की लैबोरेटरी है।”

ट्रेन चारबाग पहुँची। सब लोग उतर पड़े। फिर एक टैक्सी पर बैठ कैसरबाग पहुँचे। वहाँ गोपाल के दरवाजे पर शहनाई बज रही थी। मकान में अच्छी सजावट की गई थी। नाते-रिश्तेदार और मेहमान लोग भीतर से बाहर तक इधर-उधर डोलते आपस में बातें करते नजर आ रहे थे। खूब धूमधाम थी और अच्छी खासी चहल पहल।

गोपाल, सागर, और शेखर से मिलकर बहुत खुश हुआ और उसने भी ठीक सागर की ही तरह उलाहना दिया शेखर को कि वह ईद का चाँद हो रहा है, गूलर का फूल। लेकिन शेखर की तो अपनी हंसने की ही आदत थी। वह हँसी-हँसी में बड़ी-बड़ी बातें टाल जाता था।

वह दिन बीता, रात आई, फिर सबेरा हुआ। दरवाजे पर अँगरेजी बँड बजने लगा। दूसरी ओर लाउडस्पीकर पर गीत गूँजने लगा—‘न मैं भगवान हूँ, न मैं शैतान हूँ, दुनिया जो चाहे समझे मैं तो इन्सान हूँ।’ शेखर इधर-उधर, बाहर-भीतर घूमता-फिरता, वह एक जगह स्थिर होकर नहीं बैठता। और सागर का यह प्रयत्न था कि वह अपने शेखर दादा के साथ ही साथ रहे, उनसे कभी अलग न हो; लेकिन शेखर उससे कतराता था।

अस्थिर चित्त और लोभी स्वभाव वाला युवक शेखर हमेशा इस टोह में रहता कि वह कहीं भी जाये तो वहाँ उसका स्वार्थ सिद्ध जरूर होना चाहिये। यहाँ बरातियों की भारी मजलिस में वह एक ऐसे साथी की तलाश में

था जो या तो उस जैसा चन्ट हो या फिर गाँठ का पूरा और भ्रूल का बुद्ध, तो उसका काम बने। सागर को यह चिन्ता थी कि कहीं शेखर किसी के साथ कोई दाँव न खेल बैठे जो बदनामी की बदनामी हो और बरात का सारा मजा किरकरा हो जाये।

६

गोपाल की बारात कस्बा नवाबगंज आई थी। शेखर कुछ अनमना था। उसकी उत्सुकता और चंचलता न जाने कहाँ लोप हो गई थी। वह किसी पर व्यक्त नहीं करता; लेकिन यह सही था कि उसे किसी ऐसी वस्तु की तलाश थी जिसका अभाव उसे इस समय बहुत ही खल रहा था।

और यह वस्तु शराब थी। शेखर को उसके बिना चैन नहीं पड़ता। व्यसन कोई भी हो, जब वह मनुष्य के पीछे पड़ जाता है तो फिर उसका पल्ला नहीं छोड़ता। कहावत है कि हर नत बुरी होती है। शेखर को तलब सता रही थी। वह मुरूर में खो जाना चाहता था, नशे में डूब जाना चाहता था। उसका ऐसा विश्वास था कि जिन्दगी का सुख इसी में है। बरातियों के बीच वह अपनी ग्रन्थ नहीं खोल पाता, विवश होकर रह जाता। इस तरह एक दिन बीत गया और उसकी प्रिय वस्तु उसे प्राप्त नहीं हुई।

लेकिन परम्परा अपना कार्य सम्पादित करती रहती है, ठीक उसी तरह जैसे प्रकृति अपने नियम के विरुद्ध नहीं चल पाती। जो जैसा होता है उसको हर जगह वैसे ही लोग मिल जाते हैं। शेखर ने भी यहाँ कुछ दोस्त

बनाये चन्द रोजा । यद्यपि उस इलाके में मद्य-निषेध था; लेकिन फिर भी जरायम पेशा लोग भभके से शराब खींचते थे । इस प्रकार शेखर को यहाँ विलायती शराब न मिलकर देशी मिली, वह भी कच्ची ।

शेखर का अमल पूरा हुआ और वह रंगीनियों में खोने की कोशिश करने लगा । बरात में वह बहुत कम दिखाई देता । सागर हमेशा उसकी तलाश में ही लगा रहता और मिलने पर कहता कि कहीं चले जाते हो दादा; घंटों तुम्हारा पता ही नहीं चलता । वह हँसकर टाल देता और तनिक मौका मिलते ही फिर जा पहुँचता उन्हीं लोगों के बीच जिनसे पीने-खाने के मामले में अभी नई-नई दोस्ती हुई थी ।

एक जगह जब कई नशेबाज इकट्ठे होते हैं तो वे बहुत दूर की हाँकते हैं । ऐसी बेसिर-पैर की बातें करते हैं कि जिसका नाम नहीं । वे सब अपने को लाट साहब से कम नहीं समझते और सुरूर में आ अपना कच्चा चिट्ठा बयान कर जाते हैं कि मेरी असनियत यह है । जिस दिन बढ़ार थी उस दोपहर को शेखर बैठा था कस्बे के किनारे एक छोटे से कच्चे मकान में । उस घर में अवैध शराब खींची जा रही थी । पियक्कड़ लोग बैठे थे, वे आपस में झूम-झूम कर बातें कर रहे थे । कोई सुरा पान कर रहा था किसी के होंठ बीड़ी का कश खींच रहे थे और किसी की उँगलियों के बीच दब रही थी सिगरेट । परस्पर सब में बातचीत का दौर चल रहा था कभी नरम और कभी गरम । देखते ही देखते तनिक सी बात में तकरार हो गई । एक ने गिलास पटक दिया । जमीन पर काँच के टुकड़े इधर-उधर फैल गये । और दूसरा ताव में भर कर खड़ा हो गया । वह उससे कहने लगा—“जामो जी, अपने मुँह मियाँ मिठ्ठू बनते हो । पचास रुपये घोट गये पंडित रामनारायण के । लाये कोई गाहक (ग्राहक) ? पटाया कोई सौदा ? मैं ऐसा नीच नहीं जो दूसरे की रकम खा जाऊँ और काम भी न करूँ । देखो कल ही एक सिंघी को लाता हूँ । उसे औरत की जरूरत है । रुपये दो हजार दिलवाऊँगा रामनारायण को । तब अपना कमीशन लूँगा पूरे दो सौ । मैं कच्ची गोभलियाँ नहीं खेला । अब तक पन्द्रह-बीस औरतों की बिक्री कर चुका हूँ ।”

तीसरा था एक मियाँ जिसकी दाढ़ी कुछ सफेद हो गई थी, उस पर मेहदी रच रही थी। उसकी आँखें लाल हो रही थी। और वह बुझी हुई बीड़ी का कश खींच रहा था। अपने साथी की बात सुन तैश में आ वह बोल उठा—“पंडित रामनारायण कोई आदमी है। मर्द होकर एक औरत से डरते हैं। यह बुजदिली नहीं तो और क्या है? अरे! बहू बेवा (बिधवा) हो गई तो क्या हुआ? उसे घर में रखे। यह अच्छी समझ है जो उसे गैर के हाथ बेचने पर उतारू है। अल्लाह! अल्लाह! पता नहीं कितना डरते हैं कि उसके मँकेवाले आकर उसे लिवा ले जायेंगे और उसका दूसरा ब्याह कर देगे इससे उनके खानदान की नाक कट जायेगी और जब जाति-कुजाति के हाथ उसे बेचेंगे तो नाक बढ़ जायेगी। अच्छी समझ है। अरे यारो, मैंने तो यहाँ तक सुना है कि वे उस बेगुनाह औरत की जान लेना चाहते थे। लेकिन इस डर से इरादा बदल दिया कि वे फँस जायेंगे और उन पर मुकदमा चल जायेगा।”

शेखर अभी अधिक मोज में नहीं आया था। उसकी बुद्धि उसका साथ दे रही थी। वह सुन रहा था पंडित रामनारायण की बहू की कहानी। उसे ऐसा लग रहा था कि जो काम अन्य लोगों से नहीं हो रहा है वह उसके द्वारा सम्पन्न होकर रहेगा। उसने सब कुछ सुना और समझा, फिर धीरे से एक साथी से पूछ लिया कि ये रामनारायण रहते कहाँ हैं? फौरन ही उसे जबाब मिला—“टिकली टोला में पक्का दुमंजिला मकान है उनका। पुराने महाजन हैं, देन लेन का काम करते हैं और भइया डरपोक तो इतने हैं कि तनिक भी पैर पटक दो तो उनके पसीना आ जाता है।”

रामनारायण की बहू के विषय में जो भी बातें शेखर ने सुनीं उसने उसने यह निष्कर्ष निकाला कि कल बरात विदा हो जायेगी। मुझे यहीं रहना चाहिये और तरकीब सोचनी चाहिये कि चिड़िया उड़ जाये मगर किसी को पता भी न चले कि वह कहाँ गई। तिकड़म के मामले में गाँव और कस्बे के लोग अधूरे होते हैं। वे चक्रव्यूह के अन्दर घुसना तो जानते हैं, लेकिन उसको तोड़ना नहीं। मुझे यकीन है कि मैं कामयाब होऊँगा। मौका सामने आये तो उसे खोना नहीं, बल्कि उससे फायदा उठाना चाहिये।

गोपाल की बरात विदा हुई और जब बस पर बैठे हुए बरातियों के बीच सागर ने तलाश किया शेखर को तो वह न दिखाई दिया। सागर हैरान होता रहा, रास्ते भर सोचता रहा कि आखिर वह चला कहाँ गया। मालूम होता है कि बरात की विदाई से पहले ही वह विदा हो गया। वाकई उसके भेद को कोई दूसरा नहीं समझ सकता। वह आदमी बहुत ही विचित्र है बहुत ही भयानक और एक अनबूझ पहेली।

बरात जब लखनऊ पहुँची और कान्ता ने सागर के साथ शेखर को नहीं पाया तो उसने चौकता हुआ प्रश्न किया भाई से—“शेखर दादा को कहाँ छोड़ आये, भइया ?”

“कुछ न पूछो, कान्ता। हमारे शेखर दादा एक ऐसे परिन्दे हैं जिनका कोई बसेरा नहीं। सुबह कहाँ, शाम कहीं, वादा कहीं और मौजूदगी कहीं। वे बिना डाल के पत्ते हैं जो इधर-उधर डोलते फिरते हैं। न जाने कहाँ गायब हो गये बरात से ही। मैं.....”

सागर यह कह रहा था कि तब तक कान्ता बोल उठी—“हाँ भइया, मैं जान गई। दादा इसलिये चले गये बिना बताये ही चोरी-चोरी कि कहीं तुम उन्हें अपने साथ कानपुर न लिवा ले जाओ। वे बड़े सयाने हैं। न बड़ो का कहना मानते हैं और न छोटो का। चलो कोई बात नहीं फिर देखा जायेगा। कभी तो मिलेंगे ही।”

कान्ता की बात सुन सागर चुप हो गया। उसके मुँह से एक गर्म उसास निकल पड़ी और उसके अन्तर्मन ने कहा कि यदि तूफान को रोक सकने की शक्ति तिनके में होती तो बाँधने से बाजारों लगने लगतीं। हवा मुट्ठी में कैद हो जाती और बिगड़े हुए लोग सुधर जाते। आवाज़ भी शराफत का चौगा पहन लेते। ईमान तिनका है और अधर्म तूफान। दोनों का संघर्ष आदिकाल से चलता आया है। हम लोग तिनके हैं और शेखर दादा तूफान। तूफान की शक्ति बहुत बड़ी होती है और उम्र छोटी। काश ! शेखर दादा इस तथ्य को समझ पाते तो फिर हमें उनके प्रति कुछ सोचना नहीं पड़ता। वे आदमी नहीं कहे जाते और कुशल जोहरी उनकी परख करते।

अब बैठ के बोल मौन हो चुके थे। गोपाल के घर में चहल-पहल भीतर-बाहर अवश्य थी; लेकिन सागर को लगता था कि जैसे हवेली सूनी हो गई है और उसमें बचे-बुचे लोग मूक हो गये हैं, बधिर हो गये हैं।

७

अधेड़ पण्डित रामनारायण अपने ऊँचे चबूतरे पर पड़े तख्त पर बैठे प्रातः की धूप का सेवन कर रहे थे कि एक आसामी ने आकर पालागन की और फिर वह टेढ़ से नोट निकालने लगा। शायद ब्याज देने आया था। तब तक पोस्ट में पण्डित जी के पास एक लिफाफा फेंक कर चला गया। लिफाफा लाल रंग का था उस पर कई टिकटे लग रही थी और पता लिखा था अंग्रेजी में। वे चौंक गये और एक क्षण में ही वे बहुत सी बातें सोच गये कि उनके रिश्तेदार तथा घरवाले कोई भी अंगरेजी नहीं जानते फिर यह चिट्ठी किसकी है, किसने लिखी है और कहाँ से आई है? इसके अन्दर रखे खत का मजमून क्या है? आसामी की बात बीच में ही रह गई और वे जल्दी जल्दी लिफाफा खोलने लगा।

लिफाफे के अन्दर जो पत्र निकला वह हिन्दी में था। उसमें लिखा था—“पण्डित रामनारायण जी! गुप्त रूप से मुझे पता चला है कि आप अपनी बिधवा बहू को पहले मार डालने की कोशिश में थे; लेकिन फिर इस डर से यह विचार बदल दिया कि ऐसा करने में आप बच नहीं सकेंगे, आप गिरिफ्त में आ जायेंगे और आप पर मुकदमा चल जायेगा। मगर अब जो इरादा आप का है वह मुझे मालूम हो गया है कि आप उस निदोष बहू को बेच देना

गोपाल की बरात विदा हुई और जब बस पर बैठे हुए बरातियों के बीच सागर ने तलाश किया शेखर को तो वह न दिखाई दिया। सागर हैरान होता रहा, रास्ते भर सोचता रहा कि आखिर वह चला कहाँ गया। मालूम होता है कि बरात की विदाई से पहले ही वह विदा हो गया। वाकई उसके भेद को कोई दूसरा नहीं समझ सकता। वह आदमी बहुत ही विचित्र है बहुत ही भयानक और एक अनबूझ पहेली।

बरात जब लखनऊ पहुँची और कान्ता ने सागर के साथ शेखर को नहीं पाया तो उसने चौकता हुआ प्रश्न किया भाई से—“शेखर दादा को कहाँ छोड़ आये, भइया ?”

“कुछ न पूछो, कान्ता। हमारे शेखर दादा एक ऐसे परिन्दे हैं जिनका कोई बसेरा नहीं। सुबह कहीं, शाम कहीं, वादा कहीं और मौजूदगी कहीं। वे बिना डाल के पत्ते हैं जो इधर-उधर डोलते फिरते हैं। न जाने कहाँ गायब हो गये बरात से ही। मैं.....।”

सागर यह कह रहा था कि तब तक कान्ता बोल उठी—“हाँ भइया, मैं जान गई। दादा इसलिये चले गये बिना बताये ही चोरी-चोरी कि कहीं तुम उन्हें अपने साथ कानपुर न लिवा ले जाओ। वे बड़े सयाने हैं। न बड़ों का कहना मानते हैं और न छोटों का। चलो कोई बात नहीं फिर देखा जायेगा। कभी तो मिलेंगे ही।”

कान्ता की बात सुन सागर चुप हो गया। उसके मुँह से एक गर्म उसास निकल पड़ी और उसके अन्तर्मन ने कहा कि यदि तूफान को रोक सकने की शक्ति तिनके में होती तो बाँधने से बाजारों लगने लगतीं। हवा मुट्ठी में कैद हो जाती और बिगड़े हुए लोग सुधर जाते। आकारा भी शराफत का चौगा पहन लेते। ईमान तिनका है और अधम तूफान। दोनों का सघर्ष आदिकाल से चखता आया है। हम लोग तिनके हैं और शेखर दादा तूफान। तूफान की शक्ति बहुत बड़ी होती है और उम्र छोटी। काश ! शेखर दादा इस तथ्य को समझ पाते तो फिर हमें उनके प्रति कुछ सोचना नहीं पड़ता। वे आदमी नहीं कहे जाते और कुशल जोहरी उनकी परख करते।

अब बँड के बोल मौन हो चुके थे। गोपाल के घर में चहल-पहल भीतर-बाहर अवश्य थी; लेकिन सागर को लगता था कि जैसे हवेली सूनी हो गई है और उसमें वचे-खुचे लोग मूक हो गये हैं, बधिर हो गये हैं।

७

अधेड पण्डित रामनारायण अपने ऊँचे चबूतरे पर पड़े तख्त पर बैठे प्रातः की धूप का सेवन कर रहे थे कि एक आसामी ने आकर पालागन की और फिर वह टेढ़ से नोट निकालने लगा। शायद ब्याज देने आया था। तब तक पोस्ट में पण्डित जी के पास एक लिफाफा फेंक कर चला गया। लिफाफा लाल रंग का था उस पर कई टिकटे लग रही थी और पता लिखा था अंग्रेजी में। वे चौक गये और एक क्षण में ही वे बहुत सी बातें सोच गये कि उनके रिश्तेदार तथा घरवाले कोई भी अंगरेजी नहीं जानते फिर यह चिट्ठी किसकी है, किसने लिखी है और कहाँ से आई है? इसके अन्दर रखे खत का मजमून क्या है? आसामी की बात बीच में ही रह गई और वे जल्दी जल्दी लिफाफा खोलने लगा।

लिफाफे के अन्दर जो पत्र निकला वह हिन्दी में था। उसमें लिखा था —“पण्डित रामनारायण जी ! गुप्त रूप से मुझे पता चला है कि आप अपनी बिधवा बहू को पहले मार डालने की कोशिश में थे; लेकिन फिर इस डर से यह विचार बदल दिया कि ऐसा करने में आप बच नहीं सकेंगे, आप गिरफ्त में आ जायेंगे और आप पर मुकदमा चल जायेगा। मगर अब जो इरादा आप का है वह मुझे मालूम हो गया है कि आप उस निर्दोष बहू को बेच देना

चाहते हैं किसी ग़र मर्द के हाथ । आप को भय है कि कही उसके मँके वाले आकर उसे लिवा न ले जाये और उसका विधवा विवाह न कर दें । इसीलिये आप उसको बला समझ अपने घर से टाल देना चाहते है । इन्सानियत यह नहीं कहती है । आप किसी के शरीर के मालिक नहीं हैं । और फिर औरतों की बिक्री तो एक बहुत बड़ा जुर्म है । आप को यह भी मालूम हो जाना चाहिये कि मैं सी० आई० डी० इन्स्पेक्टर हूँ । आप पत्र मिलते ही रात को दस बजे कस्बे के किनारे बड़े तालाब के पास मंदिर में मुझसे मिलिये और साथ मे बहू को भी लेते आइये । मैं उसके बयान लूँगा । और अगर आप न आये और अपना इरादा न बदला तो मैं मामला आगे बढ़ा दूँगा । पुलिस आपको हैरान कर डालेगी । आप फँस जायेंगे बुरी तरह । कचहरी दीड़ते-दीड़ते आप के सब कर्म हो जायेंगे । बेहतर यही है कि उस बेगुनाह बहू को नाहक न सताइये और उसे बेचने वाली बात भूल जाइये । मुझे उसकी जान खतरे मे मालूम होती है इसीलिये मैं उसके बयान लूँगा । आप के साथ उसका आना जरूरी है ।”

रामनारायण ने इतना पढ़ा तो उनकी आँखे फट गई । एड़ी से चोटी तक वे काँप गये । तभी आसामी ने ग्यारह रुपये के नोट उनके आगे बढ़ा दिये और यह कहकर जाने लगा कि महाराज यह ब्याज पिछली तिमाही का है । अब आप का फगुई (होली) के बादि ही रुपिया और ब्याज दोनों दूँगा ।

नोट तस्त्त पर जहाँ के तहाँ ही पड़े रहे । आसामी चला गया और राननारायण पुनः पत्र पढ़ने लगे । नीचे लिखा था—“हाँ । देखिये इस पत्र को आप अपने तक ही रखें । इसके विषय मे किसी से सलाह मशवरा न ले, नहीं तो जानते हैं क्या होगा । आपकी पोजीशन खराब हो जायेगी । आपकी इज्जत के मोती का पानी उतर जायेगा । आप बदनाम हो जायेंगे । मैं खुद आ सकता था, आप से मिल सकता था और शिकायत कर सकता था ; लेकिन यही सोचकर कि चख-चख होगी, आप की बदनामी फैलेगी, नहीं आना उचित समझा । मैं जानता हूँ कल आप को चिट्ठी मिल जायेगी । बाकी आप

स्वयं समझदार हैं। रात को ठीक दस बजे बहू को लेकर मेरे पास चले आइये।”

—आपका
एक शुभचिन्तक

रामनारायण के काटो तो बदन में लोहू नहीं। उनका चेहरा सफेद पड़ गया। अपनी खुरदरी बढ़ रही दाढ़ी पर हाथ फेर वे सोचने लगे कि यह अच्छी समस्या सामने आकर खड़ी हो गई है। लोग सच कहते हैं जब बात एक बार मुँह से निकल जाती है तो फिर वह गुप्त नहीं रह सकती, एक न एक दिन अवश्य खुलती है। अभी वह काम हुआ भी नहीं और उसका ठिठोरा पहले से ही पिट गया। सी० आई० डी० के इन्स्पेक्टर ने जासूसी करके पता लगा लिया होगा। तभी उसने चिट्ठी लिखी है। मुझे उससे मिलना चाहिये; लेकिन खाली हाथ नहीं। जमाना तिकड़म का है, उसको रिश्वत देने से काम चल जायेगा। अगर सौ-पचास रुपये देकर पिण्ड छूट जाये तो बहुत अच्छी बात है। कहाँ से आकर यह गाज मेरे सिर पर गिर पड़ी। इसे ही कहते हैं अनहक दण्ड और अनहोनी।

रामनारायण देर तक वहाँ बैठे उसी समस्या का हल सोचते रहे। वे उधड़ बुन में व्यस्त हो थे कि एक सज्जन उनके पास आकर बैठ गये और राज्य सरकार की टीका-टिप्पणी करने लगे। रामनारायण ने रूखापन दिखलाया। उन्होंने रुपये उठाये और धीरे-धीरे अन्दर चले आये।

×

×

×

चोर जब चोरी करने घर से निकलता है और आगे चलकर रास्ते में ही वह सन्देह में गिरफ्तार हो जाता है तो उसे बहुत दुख होता है कि न खुदा ही मिला न विसाले सनम, न इधर के रहे और न उधर के रहे। मतलब यह कि चोरी भी नहीं कर पाये और सजा पहले ही मिल गई। रामनारायण की भी यही गति थी। वे अपने आप में ही घुट रहे थे। उनके विचार उन्हें पागल बना रहे थे और ऐसा लगता था कि जैसे अपने सोचने-समझने की शक्ति

वे खो चुके हैं और उनका मस्तिष्क अत्यन्त क्लान्त है। दोपहर को उनसे भोजन नहीं किया गया, थोड़ा सा खा उठ आये। वे चारपाई पर लेटे करवटें बदलते रहे। इस बीच उन्होंने सी० आई० डी० इन्स्पेक्टर की चिट्ठी को फिर पढ़ा और मन ही मन गुस्सा भय की आशंका से काँप उठे। तीसरे पहर वे बाहर नहीं निकले अन्दर ही पड़े रहे। साँझ आई और रात ने उदासी का सामान उनके सामने लाकर प्रस्तुत कर दिया। इस समय उनके सिर में तेजी से पीड़ा हो रही थी और वे मौन थे। लड़का तगादे गया था वह लौट आया। बड़ी बहू ने रसोई बनाई। पत्नी ने भोजन के लिये कहा तो पहले वे इन्कार कर गये लेकिन जब पुत्र भी वहाँ आ माँ का समर्थन करने लगा तो मजबूर हो चौके में गये। कुछ नेवाले जैसे तैसे मुँह में डाले। वे नहीं चले तो जबरदस्ती निगल गये और जल्दी से उठ आये। अब पत्नी और पुत्र दोनों ही भाँप गये कि वे कुछ परेशान हैं लेकिन न किसी ने पूछा और न किसी ने बताया। रामनारायण बाहर बैठक में आ गये। वहाँ जल रही लालटेन को बुझा अँधेरे में लेट रहे। सामने आले में रखी टाइम पीस टिक-टिक कर रही थी। उसके डायल पर रेडियम के नम्बर थे और मुड़ियाँ भी थीं दोनों उसी की। वे सफेद नीली चमक रही थी और रामनारायण उस घने अँधेरे में देख रहे थे कि छोटी सुई नौ को पार गई है और बड़ी पाँच पर पहुँच रही है। बस। दस बजने में अब केवल पैंतीस मिनट ही रह गये हैं। मुझे इन्स्पेक्टर के पास पहुँचना है। इस तरह एक बार वे भय से फिर काँप गये और उनका अन्तर पत्ता जैसा हल्का हो गया, कलेजा धुकुर-धुकर करने लगा और साँसें फूलने लगीं।

अब रामनारायण चारपाई पर लेटे न रह सके। वे उठे और अँधेरे में ही अलमारी खोलकर सन्दूकची में से नोट निकाले। यह रकम उन्होंने साँझ होने से पहले ही अलग रख दी थी। वे चबूतरे पर आये। सदीं अधिक जान पड़ी तो अन्दर आ अपना ऊनी कम्बल ओढ़ और कानों पर मफलर बाँध वे धीरे-धीरे दबे पाँव चबूतरे की सीढ़ियाँ उतरने लगे। बैठक में वे बाहर से ताला भी धीरे से ही बन्द कर आये थे कि घर में कहीं कोई जान न जाये और पृष्ठ बैठे कि रात को कहाँ जा रहे हो।

यद्यपि अभी समय दस बजे के लगभग था, लेकिन कस्बे की रात अंधेरे में भयानक सी लग रही थी। बस्ती के किनारे सूने गलियारे पर राम-नारायण चले जा रहे थे। ऐसा लगता था कि वे महान अपराधी हैं और अपने कुसूर की सजा सुनने अदालत में जा रहे हैं। उनकी पेशी है। उन्हें जाना पड़ेगा ही; क्योंकि मजबूरी है।

८

शुक्ल पक्ष की रात्रि थी; लेकिन चाँद अभी नहीं निकला था। रात अंधेरी थी और सन्नाटे से भर रही थी। बस्ती एक ओर छूट चुकी थी। सामने खूब भारी तालाब था—दूर तक लम्बा टेड़ा-मेढ़ा फैला हुआ। उसके इर्द-गिर्द ग्राम, जामुन तथा नीम आदि के पेड़ थे। वे अपनी छाया से उस अंधेरे को और भी अधिक वीभत्स बना रहे थे। पतझड़ बीत चुका था लेकिन उसकी निशानी सूखे पत्ते बजने लगते, खड़खड़ा उठते और चरमरा कर रह जाते जब रामनारायण का पैर उन पर पड़ता। वे मंदिर की ओर बढ़ रहे थे। उनका साहस पीछे लौट रहा था, डग अस्त-व्यस्त पड़ रहे थे। अभी वे मंदिर के चबूतरे तक ही पहुँचे थे कि पीछे से किसी ने टोक दिया।

“कौन है ? मंदिर की ओर क्यों जा रहे हो ?”

इस आवाज ने जिसमें एक साथ ही दो सवाल निहित थे, रामनारायण के हाथ पैर फुलों दिये। वे काठ जैसे जहाँ के तहाँ खड़े हो गये। न पीछे घूमे और न आगे बढ़े।

अब प्रश्नकर्ता रामनारायण के सम्मुख आकर खड़ा हो गया। उस

अँधरे में उन्होंने देखा कि वह व्यक्ति कोट पतलून पहने है। उसके सिर पर हैट है। उसने जेब से लाइट निकाला, फिर सिगरेट जला एक कश खींचता हुआ बोला—“आप ही पंडित रामनारायण हैं?” और यह कहने के साथ ही उसने लाइट जेब में डाल टाच निकाल ली। फिर उसकी रोशनी रामनारायण के चेहरे पर फैकता हुआ बोला—“आप रामनारायण ही हैं यह सही है। लेकिन अकेले कैसे? वह कहाँ है?”

“जी……।”

रामनारायण जल्दी में कुछ जवाब न दे पाये। वे घबड़ा गये और ‘जी’ कहकर ही रह गये। वह व्यक्ति बिगड़ उठा। टाच उसने बन्द कर ली और रोष भरे स्वर में बोला—“आप नादानी करते हैं। जानते नहीं मैं सी० आई० डी० इन्स्पेक्टर हूँ। आप ने मुझे समझ क्या रखा है। मैं आप को सात लाख की हवेली में पहुँचा सकता हूँ। मैंने मामला सुलझाने की कोशिश की थी और आप……।”

रामनारायण के हाथ काँप रहे थे, शरीर थरथरा रहा था। उन्होंने नोट निकाले और इन्स्पेक्टर की जेब में डालते हुये खुशामद भरे स्वर में बोले “हुजूर, आप के अप्रति है। आप ही माई-बाप है। मामला-ग्रामला ये पानफूल तो वैसे कुछ नहीं, मुझे लोगों ने यो ही बदनाम कर रखा है। आप……।”

“शर्म नहीं आती आप को, पंडित जी। एक तो सफेद झूठ बोलते हैं और फिर उस पर रिश्त देते हैं। चोर की दाढ़ी में तिनका। रिश्त देने का मतलब यह होता है कि आप अपना जुमं इकबाल कर रहे है। चलिये आपको अभी थाने ले चलता हूँ और घूस देने के मामले में बन्द करवाता हूँ। पहले तो एक था अब दो मुकद्दमे बन जायेंगे।” यह कहकर बलिष्ठ इन्स्पेक्टर ने रामनारायण का पहुँचा पकड़ लिया और आगे बढ़ उन्हें अपनी ओर खींचने लगा।

रामनारायण के होश-हवास गुम हो गये। वे खुशामद करने तथा धिधियाने लगे। वे जमीन पर पैर अड़ाते और इन्स्पेक्टर उन्हें अपनी ओर

खींचता । इस तरह वे थोड़ी दूर तक खिंच आये । तब रोककर उसके पैरों पर गिर पड़े और मिन्नत करने लगे । लेकिन इन्सपेक्टर बराबर यही कहे जा रहा था “नहीं मैं एक नहीं सुनूँगा । तुम्हीं जैसे नापाक लोगों ने सरकार को बदनाम कर रक्खा है । हर आदमी गाल बजाता है कि रिश्वत लेना जुर्म है; लेकिन उसका देना ही सबसे पहला गुनाह है । आपने रिश्वत दी, आप दोषी है ।

आखिर रामनारायण मजबूर होकर फिर इस बात पर राजी हो गये कि कल वे बहू को ले आयेंगे । तब तक की उन्हें मोहलत दी जाये । रुपये इन्सपेक्टर की जेब में पहुँच चुके थे, वह मान गया । फौरन ही वहाँ से चल दिया और जाते-जाते यह कहता गया “कल इतनी रात को न आना । छे बजे ही घर से चल देना; क्योंकि बहू-बेटी का मामला है, ज्यादा रात ठीक नहीं ।”

इन्सपेक्टर तो चला गया लेकिन रामनारायण पर-कटे परिन्दे की नाई वही बैठे रहे । उनकी गति भंग हो गई थी । वे उठना चाहकर भी नहीं उठ पा रहे थे । वे सोच रहे थे कि अब घर में सबको बताना पड़ेगा । तभी बहू मेरे साथ यहाँ आ सकती है । इस इन्सपेक्टर से जान बचाना टेढ़ी खीर है ।

वे सोच रहे थे और पूरब के आकाश में चाँद निकल आया था । अंधेरा दूर हो गया था और अब वे उजाले में बैठे थे । सहसा उन्हें बोध हुआ कि घर जाना है । वे उठे और धीरे-धीरे चलने लगे । उनका मन कह रहा था कि किसी तरह इन्सपेक्टर यहाँ से चला जाये नहीं तो वह कुछ करके रहेगा । मुझे लगता है कि बात दब जायेगी, काम बन जायेगा । और फिर उलझन में परेशानी तो होती ही है ।

घर में जब रामनारायण ने पत्नी को सब हाल बतलाया तो वह खूब बड़बड़ाई और अपना सारा गुस्सा उतार दिया विधवा बहू पर। उसने उसे करछुले से पीटा। उसकी सारी देह नीली कर दी। बड़ी बहू और लड़के ने भी बड़बड़ाकर आखिर में उनको यही सलाह दी कि वे बहू को लेकर इन्सपेक्टर के पास जायें। इस तरह छे बजे के कुछ पहले ही समुर और बहू घर से निकले। तब सूरज डूब चुका था; लेकिन पश्चिम के आकाश में उसकी कुछ लाली शेष रह गई थी। हवा में ठंड समाने लगी थी। झुटपुटा धरती पर उतरने की तैयारी कर था। कुबेरी बेला थी। इस समय की यात्रा को प्रशुभ माना जाता है। इसके अलावा रामनारायण की बाईं आँख भी धीरे-धीरे फड़क रही थी। वे मन ही मन शंका से भर रहे थे। बहू उनके पीछे चली जा रही थी, गूंगी-बहरी सी।

जब तालाब करीब आ गया और घने पेड़ों के बीच से समुर-बहू दोनों गुजरने लगे तो रामनारायण कुछ क्षण के लिये वहाँ रुक गये और बहू की ओर उन्मुख होकर कहने लगे—“देखो ! इन्सपेक्टर कुछ भी पूछे तुम यही कहना कि मुझे कोई तकलीफ नहीं है। मैं कहीं नहीं जाना चाहती हूँ, अपनी समुराल में ही रहूंगी। दूसरा ब्याह नहीं करूंगी। समझ लो, तुम्हें जिन्दगी यही पार करनी है। काम घर वाले हो आते हैं, बाहरवाले साथ नहीं देते।”

बहू ने ‘हाँ’ छोटक सिर हिला दिया और रामनारायण आगे बढ़े। वे अब भी उसे समझा रहे थे। तब तक उनकी निगाह पड़ी, देखा मन्दिर के चबूतरे पर इन्सपेक्टर टहल रहा है। उसके हाथ में सिगरेट दब रही है। वह बार बार कश खींचता है। वे सहम गये और भयभीत हो उसकी ओर धीरे-धीरे बढ़ने लगे।

मन्दिर पुराना था। उसके अन्दर मूर्ति तो थी; लेकिन कभी उसकी पूजा नहीं होती थी। इधर आता ही कौन था वस्ती के बाहर। बहू को साथ देखते ही इन्सपेक्टर मन ही मन बहुत प्रसन्न हुआ। दुनियादारी के नाते

वह मीठी हमदर्दी करता हुआ बोला—“बहू से कहिये, वह मन्दिर के अन्दर जाकर बैठे। यहाँ बाहर चबूतरे पर अच्छा नहीं लगता।”

बहू जा मन्दिर के एक कोने में दुबककर खड़ी हो गई। इन्स्पेक्टर की बात सुन पंडित रामनारायण को कुछ तसल्ली हुई। उनका मन कहने लगा कि यह आदमी अपने माफिक हो जायेगा। भला इन्सान मालूम होता है, इसके दिल में हमदर्दी है।

और इन्स्पेक्टर पंडित जी से कहने लगा—“अरे, आप अपने साथ गवाह नहीं लाये? मैंने उनके लिये भी तो कहा था?”

यह सुनते ही रामनारायण हक्के-बक्के हो गये। वे इन्स्पेक्टर का मुँह देखने लगे और भीत स्वर में धीरे-धीरे बोले—“कैसे गवाह? गवाहों की क्या जरूरत है। माफ़ कीजिये, आपने मुझसे कहा नहीं था। आप....”

“क्या कहा? कहा नहीं था। आप भूलते हैं। अपना हाँश दुरुस्त कीजिये। मैं गलत बोलूँगा! यह कहिये कि आपने सुना नहीं या सुनकर टाल दिया। जाइये फौरन अभी चार गवाह लेकर आइये। मैं आप से उनके सामने लिखवाऊँगा कि आप अपने इरादों के मुताबिक अपनी विधवा बहू को न बेचेगे और न जान से मारेगे, वह आप के घर में ही रहेगी।”

इन्स्पेक्टर की रोष भरी बातों ने जिनमें आतक का पुट विशेष था, रामनारायण पर बहुत बुरा प्रभाव डाला। उनकी स्थिति इस समय ऐसी हो गई जैसे बलिदान का बकरा अपनी जान की खैर मनाता है। वे भी भगवान से विनय करने लगे कि यह समस्या किसी तरह हल होजाय। यद्यपि वे बहुत डरे थे और कुछ भी बोलने का उनका साहस नहीं हो रहा था; लेकिन फिर भी किसी तरह उनके मुँह से यह निक्कल पड़ा—“बहू में जो पूछना हो, पूछ लीजिये। साथ लिखाना जाऊँ। बड़ी मेहरबानी होगी।”

“नहीं साहब, ऐसी मेहरबानी नहीं करनी है मुझे। बहू में जो भी बयान लेने है वह अकेले में, आप के सामने नहीं। आपके सामने तो वह वही पड़ेगी जो आप रटाकर लाये होंगे।” छूटते ही इन्स्पेक्टर ने यह जवाब दिया। रामनारायण सकते की हालत में आ गये। उनसे कुछ भी बोलते नहीं बना।

थोड़ी देर बाद रामनारायण जब कुछ संयत हुए तो उनकी हिम्मत कुछ कहने को हुई; लेकिन जैसे ही उन्होंने बात कहने के लिये मुँह खोला वैसे ही इन्सपेक्टर उन पर फिर बिगड़ पड़ा और तेज गले से बोला—“जाइये आप समय न खराब कीजिये। मैं आप के भले के लिये ही कहता हूँ कि गवाह लिवा लाइये। वरना मेरा क्या बिगड़ेगा, आप मुसीबत में फँस जायेंगे।”

“लेकिन...।”

“लेकिन-वेकिन कुछ नहीं, पंडित जी। आप जाइये, मेरी बात मानिये।”

“इन्सपेक्टर का रुख बहुत बिगड़ा हुआ था। रामनारायण की बोलती बन्द हो गई। वे कुछ कहने की अपेक्षा धीरे-धीरे वहाँ से लौट पड़े। इस समय उनका कलेजा धक्-धक् कर रहा था और मन की स्थिति उनके नियन्त्रण से बाहर हो गई थी। वे कुछ भी नहीं सोच पा रहे थे कि क्या करे और गवाह कैसे लाये? वे चले जा रहे थे। उनके पैर सीधे नहीं पड़ते। वे इधर-उधर भटक जाते। असन्तुलित मन उन्हें अन्दर ही झकझोर रहा था। उनके मस्तिष्क में सनसनाहट हो रही थी और वे बिल्कुल हतप्रभ हो गये थे।

१०

पंडित रामनारायण की विधवा बहू का नाम था उमा। और यह वही उमा थी जिसको सागर ने देखा था कि वह रो रही है और लोग जबरदस्ती उसे ढकेलते हुए अपने साथ लिवाये जा रहे हैं। उसने ससुर के

चले जाने के बाद इन्स्पेक्टर को सब हाल बतलाया। उसने कहा कि मेरा नाम उमा है, और मेरा पीहर गाँव टीकमपुर में है, जिला उन्नाव लगता है। समुराल तो आप जानते ही हैं। ये समुर नहीं जल्लाद है, पूरे जल्लाद। और सास मेरी कसाइन है। न जाने कैसे जी रही हूँ मैं। दिन होता तो आप देखते। आज मुझ पर ऐसी मार पड़ी है कि कह नहीं सकती। काल कोठरी के कैदी को भी इतनी तकलीफ नहीं मिलती होगी जितनी मुझे मिल रही है। ब्याह होने ही विधवा हो गई। पति की मृत्यु के लिये दोषी मुझे ठहराया जाता है कि मैं अभगिन हूँ। आज मेरे ब्याह को चार साल हो गये। तब मैं तेरह वर्ष की थी।

रात हो गई थी। उमा की बातें इन्स्पेक्टर ध्यानपूर्वक सुन रहा था। वह बैठा था मन्दिर के चबूतरे पर और उमा खड़ी थी अन्दर। इन्स्पेक्टर उससे बार-बार बैठने के लिये आग्रह करता; लेकिन वह खड़ी की खड़ी थी और कह रही थी कि फिर माँ-बाप ने मुझे जूनियर हाई स्कूल पास करवाया; क्योंकि पाँचवाँ मैं पहले ही कर चुकी थी, तब मेरे गाँव में वही तक स्कूल था, अब आठवाँ भी हो गया है। बाप मेरे साधारण किसान हैं, लेकिन हैं पढ़े लिखे। उनकी मैं अकेली सन्तान हूँ। वे मेरा ब्याह फिर करना चाहते थे एक युवक से। वह दूसरे गाँव में रहता था और भारत सेवक समाज का सदस्य था। उसकी इच्छा थी कि वह किसी विधवा में ही ब्याह करे। इस तरह उसके द्वारा एक उपकार हो जाता और मैं समझती थी कि मेरा उद्धार। लेकिन उद्धार नहीं मेरा सर्वनाश हो गया। जब मेरे समुर को पता चला कि मेरा पुनर्विवाह हो रहा है तो वे आये और मेरे बाप को खूब बुरा-भला कहा। अपढ़ गाँववालों ने उनका साथ दिया। उन लोगों का कहना था कि ब्राह्मण की विधवा फिर से ब्याह करेगी तो प्रलय हो जायेगी। घोर कलियुग आ गया है। नहीं ! यह ब्याह नहीं होगा। विधवा ब्याह नहीं कर सकती। इस तरह सारा गाँव मेरे समुर की तरफ था। पिताजी अकेले थे। वे कुछ न कर सके और समुर साहब मुझे ले आने में सफल हो गये।

उमा ने इन्स्पेक्टर को सागर वाली बात भी बतलाई कि एक कोई

बाबू थे वे, बेचारे हमदर्दी करके दौड़े आये। लेकिन वृद्ध जटायु की तरह असफल हो गये और रावण रूपी मेरे समुर मुझे लेकर चल दिये। समुराल में लाकर मुझे दो दिन तक भूखा रखा गया। सास-समुर दोनों ही मुझे पीटते, गालियाँ देते। मुझसे घर का सब काम लिया जाता। खाने को रूखा-सूखा मिलता। रात बीत जाती और मैं सोती नहीं, सास के पैर दबाती रहती। मगर दुर्भाग्य से वह सास नहीं डाइन है। इसके बाद मैं सुनती मेरे सास-समुर में फुस-फुस होती कि लगा दो फाँसी इस बहू को। अगर कही इसके बाप ने मुकदमा चला दिया तो बात कानून के अन्दर आ जायेगी। कानून विधवा-विवाह की आज्ञा देता है। सास कहती कि खाने में जहर दे दो। समुर कहता कि नहीं, बात छिपेगी नहीं। जेठ जेठानी यह सलाह देते कि इसे कही दूर ले जाकर छोड़ दो मरे-खपे जाकर। यो जान लेने में खतरा है। हम लोग फाँस जायेगे, हम पर मुकदमा चल जायेगा।

उमा की कहानी इतनी दर्द भरी थी कि इन्स्पेक्टर बार-बार रूमाल से अपने आँसू पोछ लेता। वह उसे हमदर्दी समझती और कहती चली जाती कि ऐसे में ही मेरे समुर को कुछ बदमाश लोगों ने तब यह सलाह दी कि मुझे बेच दिया जाये। उससे मैं बन्धन में बँध जाऊँगी और मेरे समुर का भला हो जायेगा। इस तरह मेरी जिन्दगी का नाटक चल रहा था कि बीच में आप आ गये। मुझे तनिक भी आजादी नहीं है। मैं सास और जेठानी के अलावा किसी से बात तक नहीं कर सकती। कोई पड़ोस की औरत आ जाती है तो मुझे कोठरी में बन्द कर दिया जाता है कि कहीं मैं उसके सामने अपना दुख न रोने लूँ। बस ! लिख लीजिये बयान, समझ लिये हैं आपने। यहाँ अंधेरा है घर में जाकर नोट कर लीजिये। इन्स्पेक्टर साहब, यहाँ मैं बिना मौत मर जाऊँगी। ऐसी कोशिश कीजिये कि अदालत से मुझे मेरे माँ-बाप के पास रहने का हुकुम मिल जाये। मैं इन राक्षसों के बीच नहीं रह सकती। कैसे कहूँ कि ब्याह करने को मैं उत्सुक नहीं हूँ; लेकिन इतना जरूर चाहती हूँ कि अगर जिन्दा रहूँ तो इस तरह नहीं। मुझे बहुत कष्ट है। मैं एक दुखियारी गाय हूँ। मुझ पर रहम कीजिये। आप सब कुछ कर सकते हैं, आप सरकार के आदमी हैं।

इन्स्पेक्टर ने जेब से टार्च निकाली। उसे जलाकर देखा घड़ी में सात बज रहे थे। वह उठकर खड़ा हो गया और उमा से बोला—“वाकई तुम्हें बहुत तकलीफ है। ये लोग इन्सान नहीं, शैतान है। अदालत से हुकुम मिलेगा तब मिलेगा। अगर तुम चाहो तो मैं तुम्हें तुम्हारे माँ-बाप के पास पहुँचा दूँ। फिर वहाँ से तुम्हें कोई नहीं ले जा सकता, यह मेरी जिम्मेदारी है।”

“लेकिन यह सम्भव कैसे हो सकता है, इन्स्पेक्टर साहब ? मैं यहाँ से जाकँ से सकती हूँ। आपने समुर जी को गवाह लेने भेजा है वे आते होंगे। मैं……!”

अभी उमा इतना ही कह पाई थी कि इन्स्पेक्टर बीच में ही सहानुभूति प्रगट करता हुआ बोल उठा—“अभी सम्भव हो सकता है। यही एक रास्ता है कि पण्डित रामनारायण के आने से पहले ही तुम मेरे साथ चल दो। न रहेगा वाँस और न बजेगी बाँसुरी। क्योंकि फिर वहाँ जाकर तुम आसानी से नहीं निकल सकती। सोच लो, अभी मौका है और मौका खोने वाले ही जिन्दगी भर पछताते हैं।”

उमा इन्स्पेक्टर को कुछ भी जवाब नहीं दे पाई। उसके मस्तिष्क में भयानक अन्तर्द्वन्द्व चलने लगा कि कहीं मैं सपना तो नहीं देख रही हूँ। यह इन्स्पेक्टर मुझे ले जायेगा मेरे माँ-बाप के पास। क्या मेरे दुख के दिन बीत गये ? क्या मैं भीत की कैद से छूट गई। मैं……।”

सहसा इन्स्पेक्टर ने उमा को टोक दिया। वह बोला—“सोचती क्या हो ? जो करना है, जल्दी करो। समय बहुत थोड़ा है। साढ़े सात बज रहे हैं। रामनारायण आते होंगे। बोलो क्या सोचा है ? समुर के साथ जाओगी या मैंके चलोगी ? मुझे तुमसे हमदर्दी है और एक इन्सान के नाते मैं तुम्हारा दुख नहीं देख सकता। सोचने-विचारने में समय नष्ट न करो। आओ चलो।” कहकर इन्स्पेक्टर मन्दिर के चबूतरे पर आ गया और प्रतीक्षा करने लगा उमा की।

लेकिन उमा जहाँ की तहाँ ही खड़ी रही। उसका मन होता कि

इन्स्पेक्टर के साथ चल दे; किन्तु साहस साथ नहीं दे रहा था। वह उधेड़-बुन में व्यस्त थी।

इन्स्पेक्टर देर होते देख दरवाजे के पास गया और जल्दी-जल्दी कहने लगा—“अरे उमा, तुम तो खड़ी हो। मुझे लगता है कि वे लोग आ रहे हैं। एक मिनट की भी देर की तो फिर उन्हीं झंझटों में फँस जाओगी। माँगने से तुम्हें मौत भी नहीं मिलेगी। मुझ पर विश्वास करो। मैं तुम्हारा साथ दूँगा। मैं हर युवा स्त्री को बहन और वृद्धा को माँ समझता हूँ। चलो बहन, देर न करो। वे जालिम अभी यहाँ पहुँच रहे हैं।”

यद्यपि उस आँधरे में न इन्स्पेक्टर हाँ देख पाया था और न उमा कि रामनारायण वगैरह उनकी ओर आ रहे हैं या नहीं लेकिन फिर भी उमा बहुत डर गई। वह भय से थर-थर कांपने लगी। ऐसे में ही पुनः अपनी बात दोहराई इन्स्पेक्टर ने व्यस्त गले से। तब उमा के कदम उठे, वह मन्दिर की चौखट से बाहर आई और एक गरम साँस छोड़ती हुई उससे बोली—“चलिये !”

आगे-आगे इन्स्पेक्टर चला, पीछे-पीछे उमा। थोड़ी दूर चलने के बाद सड़क पर एक इक्का मिला। इन्स्पेक्टर ने उसको रोका। दोनों इक्के पर बैठ गये।

ट्रेन प्लेटफार्म पर आकर रुकी ही थी कि लगभग एक घंटे का सफर तय करके इन्स्पेक्टर का इक्का पहुँच गया। टिकट लेकर दोनों गाड़ी में बैठ गये; और सीटी देकर रेल जब चली तो उमा ने एक लम्बी साँस ली। उस सर्दी के मौसम में भी उसके माथे पर पसीने की बूँदे छलछलाना आई थीं। वह चादर की पल्लू से पसीना पोछने लगी। तभी उसकी निगाह सामने की ओर गई। उसने देखा कि इन्स्पेक्टर बहुत प्रसन्न है और खिड़की के पास खड़ा सिगरेट के कश खींच रहा है।

११

मरता क्या न करता । किसी तरह पंडित रामनारायण घर पहुँचे । पत्नी और बड़े लड़के को बुलाकर सब हाल बतलाया । सभी हैरान हो गये, सभी सोचने लगे । अन्त में पड़ोसियों का सहारा लेना ही पड़ा । मुहल्ले वाले राजी हो गये और चार की बजाय छः गवाह, पंडित रामनारायण तथा उनका लड़का सभी साथ गये ।

ये लोग चले जा रहे थे । पंडितजी के लड़के के हाथ में लालटेन लटक रही थी । आपस में सबकी बातें चल रही थीं कि इन्स्पेक्टर क्या, होआ हो गया । देखो तो कैसा नाच नचा रहा है । एक के बाद दूसरी तरकीब बतलाता है । जब गवाह भी उसके सामने पहुँच जायेंगे तो कहेगा कि जाइये स्टाम्प पेपर ले आइये । वाकई सरकारी आदमी अजीब दिमाग रखते हैं । अगर ऐसा न हो तो फिर अफसर कैसे कहे जाये ।

रामनारायण कभी चुप हो जाते, अपनी समस्या के प्रति सोचने लगते और कभी लोगों की बातें सुन हाँ छोटक सिर हिला देते । ऐसे ही कभी वे केवल हँस कहकर रह जाते । बोलते वे बहुत कम थे; क्योंकि घबड़ाये हुए थे । तालाब आ गया । सब लोग उधर बढ़ने लगे । इतने में कुछ चमगादड़ उड़ने हुए उनके ऊपर से निकल गये और पेड़ों के झुरमुट में किसी डाल पर बैठा उल्लू बोलने लगा अपनी अशुभ बोली । सामने कुछ दूरी पर सियार हुआ-हुआ कर रहे थे । रात काली थी, अँधेरी थी और थी अत्यन्त भयावह ।

सबसे पहले पंडित जी का लड़का मंदिर के चबूतरे पर चढ़ा । चबूतरा सूना था । उसने इधर-उधर नजर दौड़ाई और फिर बाप से बोला—“यहाँ तो कोई नहीं दिखाई देता, पिताजी ।”

रामनारायण पुत्र के पास आ गये और शंकाभरी दृष्टि इधर-उधर डाल जल्दी-जल्दी कहने लगे—“यहीं होगा इन्स्पेक्टर । मैं यहीं छोड़ गया था । और बहू मंदिर के अन्दर है ।” यह कहकर वे मंदिर की ओर बढ़े । चौखट

पर पहुंच आवाज दी—“बहू, ओ बहू ।” लेकिन उनकी आवाज मंदिर में ऊपर तक जाकर वापस लौट आई । उनके कान गूँज उठे । तब तक लड़का भी उनके पास आ । गया था । वह लालटेन लेकर मंदिर के अन्दर घुसा । अन्य लोग चबूतरे पर खड़े थे । वे इन्स्पेक्टर की राह देख रहे थे और आपस में गुप्तगू कर रहे थे कि आखिर वह चला कहाँ गया ।

रामनारायण और उनका पुत्र दोनों सन्नाटे में आ गये । मन्दिर में कोई नहीं था, वह सूना था । दोनों बाप-बेटे एक-दूसरे का मुँह देखने लगे । उनके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थी । अब सब लोग उनके पास आ खड़े हुए और पूछने लगे—“कहाँ हैं इन्स्पेक्टर साहब, दिखलाई नहीं देते । और आपकी बहू भी तो यहाँ नहीं है ।”

रामनारायण भौचक्के से खड़े थे । उनके मुँह से आवाज नहीं निकल रही थी और उनका लड़का भी हो गया था काठ । लोगों ने समझ लिया कि मामला कुछ गड़बड़ है । उनमें से एक बूढ़ा बोला—“रामनारायण, मुझे तो कुछ दाल में काला नजर आता है । जल्दी पता करो कि इन्स्पेक्टर कहाँ गया और तुम्हारी बहू कहाँ है ?”

“हाँ चाचा ! आप ठीक कहते हैं । समझ में नहीं आता कि दोनों कहाँ चले गये ।” अब रामनारायण मन्दिर से बाहर आ गये और चबूतरे के एक कोने पर खड़े हो पुकारने लगे—“इन्स्पेक्टर साहब ! ओ इन्स्पेक्टर साहब ! कहाँ है आप ? हम लोग आ गये । जल्दी आइये ।”

किन्तु कोई जवाब नहीं मिला । तब वे बहुत घबड़ाये और चबूतरे से नीच उतर पेड़ों के झुरमुट की ओर भागे । वहाँ वे व्यस्त से बार-बार पुकार रहे थे—“बहू ! ओ बहू ! अरे कहाँ मर गई जाकर ।”

सब लोग रामनारायण के पास आये । लड़के ने उनकी बाँह पकड़ ली और निराश स्वर में दुखी होकर बोला—“चलिये ! पिता जी, घर चलिये ! मुझे लगता है कि इन्स्पेक्टर आपके जाते ही बहू को लेकर थाने पहुँच गया । तभी तो यहाँ कोई नहीं दिखाई देता ।”

रामनारायण खामोश रहे। उनका कण्ठ जैसे किसी ने दबोच रखा था। वे किकर्तव्यविमूढ़ हो गये थे। लड़के की बात सुन एक दूसरा पड़ोसी बोल उठा—“कैसी बाने करते हो, भइया। इन्सपेक्टर बहू को थाने नहीं ले गया होगा। अगर उसे थाने ले जाना होता तो मामला पहले ही वहाँ पेश कर देता। एकान्त में आपको बुलाने का उसका कोई खास मतलब रहा होगा। वह……।”

अभी उस पड़ोसी की बात पूरी भी नहीं हो पाई थी कि वही बूढ़ा फिर कहने लगा—“तुम सब लोगो की मति पर पत्थर पड़ गये है। मैं कहता हूँ कि अरे यह इन्सपेक्टर नहीं कोई चार-सौ बीसिया था। जवानो अन्धी होती है, वह आपकी बहू को ले गया।”

“क्या कहा ? बहू को ले गया और वह इन्सपेक्टर नहीं चार सौ बीसिया था।” रामनारायण के हाथो के ताँते उड़ गये। उनके पैरो के नीचे से जमीन निकल गई।

यद्यपि रात आगे बढ़ रही थी, लेकिन यह समय लोगो के घर लौटने का नहीं था। रामनारायण के हाथ-पैर फूल रहे थे, फिर भी वे लोगो के साथ चले जा रहे थे। ये सब चौराहे पर आये। आने-जाने वाली बसो और लारियों का पता लगाया। इक्के वालों से भी पूछा। मगर सब व्यर्थ। न बहू मिली और न इन्सपेक्टर। दोनो वाप-बेटे पड़ोसियो के साथ घर की ओर लौट रहे थे। वे दोनों मीन थे, और लोगो के मुह चल रहे थे कि अनर्थ हो गया। रामनारायण के कुल में दाग लग गया। ऐसा कभी नहीं हुआ था।

ट्रेन दौड़ रही थी अपनी पूरी रफ्तार से। इन्स्पेक्टर आकर उमा के पास बैठ गया। वह मुँह पर अब तक घूँघट डाले थी। इन्स्पेक्टर कहना चाहता था कि उससे पर्दा कैसा। क्योंकि वह तो उसे अपनी धर्म-बहन मान चुका है। लेकिन वहाँ बात करने की सन्धि नहीं थी। बोगी में भीड़ बहुत थी। दोनों पास-पास बैठे रहे, लेकिन रास्ते भर उनमें कोई बातचीत नहीं हुई।

ट्रेन जाकर रुकी चारबाग स्टेशन पर, इन्स्पेक्टर उठकर खड़ा हो गया। उसने उमा की ओर देख जल्दी से कहा—“आओ! उतरो उमा।”

उमा उसके पीछे-पीछे कठपुतली सी चल दी। प्लेटफार्म पर उतरते ही उसकी दृष्टि पड़ी सीमेन्ट के पीले-पुले साईन बोर्ड पर। उसमें मोटे-मोटे काले अक्षरों में लिखा था ‘लखनऊ’। वह एकदम चौंक गई और इन्स्पेक्टर से पूछने लगी—“अरे! यह तो लखनऊ है! आपको कानपुर चलना है न, टीकमपुर वहीं से करीब पड़ता है।”

इन्स्पेक्टर हँस दिया और हमदर्दी भरे स्वर में बोला—“गाड़ी में बात करने का मौका नहीं था। पहले मेरा विचार यही था कि लखनऊ पहुँच कर हम लोग फिर कानपुर की गाड़ी पर बैठ जायेंगे। लेकिन बीच में मैंने यह सोचा कि अभी तुम्हारा मँके जाना ठीक नहीं। पण्डित रामनारायण वहाँ जरूर पहुँचेंगे। व्यर्थ के लिये झगड़ा वाद-विवाद होगा। और बहुत मुमकिन हो सकता है कि वे लोग तुमको फिर ले जायें। इसलिए तुमको मेरे साथ कुछ दिन लखनऊ में रहना पड़ेगा। तुम्हारे माँ-बाप को यही बुला लूँगा। आज ही उनको तार देता हूँ। जान-बूझकर खतरा मोल क्यों लिया जाये। है न ठीक!”

उमा कुछ नहीं बोली, वह अपने में उलझकर रह गई। उसकी बुद्धि काम नहीं कर रही थी। उसके मौन को इन्स्पेक्टर ने उसकी स्वीकृति

समझा। तब वह बोला मुस्कराहट भरे स्वर में—“आओ ! चलो। यहाँ प्लेटफार्म पर कब तक खड़ी रहोगी।”

उमा इन्स्पेक्टर के साथ चल दी। दोनों ने पुल पार किया और एक नम्बर के प्लेटफार्म पर पहुंच गये। वहाँ इन्स्पेक्टर के ये शब्द उमा के कानों में पड़े—“अरे उमा, मुँह पर घूँघट क्यों डाल रखा है ? मुझे अपना बड़ा भाई समझो। आओ चलें। पहले हम लोग चाय पियेंगे। सामने ही रेस्त्राँ है।”

उमा चौंकी और जल्दी-जल्दी व्यस्त गले से कहने लगी—“नहीं, मैं चाय नहीं पियूंगी, और घूँघट हटाते मुझे लाज लगती है।”

तब इन्स्पेक्टर अपने हाथों उसका घूँघट हटाता हुआ हँसकर बोल उठा—“तुम कस्बे की बहू हो; लेकिन यहाँ मेरी बहन। आओ चलो, चाय पियो।”

“अरे ! यह क्या किया आपने ? घूँघट क्यों हटा दिया। मुझे शर्म लगती है।” यह कहकर उमा ने पुनः लम्बा सा घूँघट खींच लिया।

दोनों के पास कोई भी सामान नहीं था, वे खाली हाथ थे। उमा मना करती ही रह गई और इन्स्पेक्टर उसे रेस्त्राँ में लिवा ले गया। वहाँ उसने बड़े भाई के नाते उसे अपनी शपथ खिला दी कि वह मुँह नहीं ढकेगी, चाय पियेगी और नाश्ता करेगी। हर जगह का अलग-अलग रिवाज है। गाँव और कस्बों के लोग होटल में खाना पाप समझते हैं और शहर के लोग उसे अपनी सभ्यता।

नाश्ते से छुट्टी पा इन्स्पेक्टर उमा के साथ रेस्त्राँ से बाहर निकला। इस समय उमा का चित्त शान्त था। उसके मुँह पर घूँघट नहीं था। वह गेट से बाहर आई। इन्स्पेक्टर ने एक टैक्सी की। वह ड्राइवर से बोला—“हजरत गंज।”

ड्राइवर टैक्सी आगे बढ़ा लाया। उसने खिड़की खोल दी। तब इन्स्पेक्टर ने हाथ से इशारा किया उमा को और मुँह से बोला—“आओ ! बैठो !”

उमा टैक्सी में बैठ गई और उसके पास ही आ बैठा इन्स्पेक्टर । उसने सिगरेट जलाई और उमा से मीठी-मीठी बातें करने लगा । उमा मन ही मन बहुत प्रसन्न थी कि वह मौत के मुँह से निकल आई है और इन्स्पेक्टर अब उसे नई जिन्दगी दे रहा है । आज ही रात को वह तार दे देगा । कल या परसो तक उसके माँ-बाप आ जायेंगे । फिर वह चली जायेगी टीकमपुर और इन्स्पेक्टर का यह एहसान जिन्दगी भर नहीं भूलेगी ।

१३

अपने ब्याह के कुछ दिन बाद गोपाल कानपुर आया । सागर उससे मिलकर बहुत प्रसन्न हुआ । बसुमती और बाबू श्यामलाल भी खुशी से फूले न समाये । और कान्ता, वह तो गोपाल को पाकर ऐसी मुदित हुई जिसका कुछ नाम नहीं । वह बोली—“गोपाल भइया, आप लखनऊ में रहते हैं और हमारे शेखर दादा का पता नहीं जानते । अबकी बार आना तो उनको जरूर साथ लाना । वे बड़े घुमक्कड़ हैं । माँ कहती है कि भइया का ब्याह बाद में होगा । पहले मेरी बड़ी भाभी आयेगी । जरूर पता करना, भइया ।”

गोपाल ने एक दीर्घ उच्छ्वास ली, फिर कान्ता को समझाता हुआ स्नेह भरे स्वर में बोला—“पगली कही की । क्या मैं तुम्हारे शेखर दादा का पता नहीं लगाता हूँ । वे कही मिलते ही नहीं । सोचता हूँ कि अबकी बार तुम्हारे सागर भइया को अपने साथ ले जाऊँगा । होली आ रही है । लखनऊ में दुइज दो ही मिला-भेटी हो जाती है, त्योहार समाप्त हो जाता है । और कानपुर की होली होती है लम्बी । गंगाजी का मेला मैं यही आकर

करूँगा। इस बीच अगर शेखर दादा पकड़ में आ गये तो उन्हें जरूर लाऊँगा। वे....।”

गोपाल अपनी बात कह रहा था कि अल्हड़ कान्ता बीच में ही बोल उठी—“भइया, अगर मैं भी तुम्हारे साथ लखनऊ चलू तो कैसा रहेगा? कानपुर की होली तो हर साल देखती हूँ। इस साल लखनऊ में त्योहार मनाऊँ। बोलो, क्या कहते हो?”

कान्ता की बात का गोपाल कुछ उत्तर दे इसके पहले ही सागर कहने लगा—“नहीं! कान्ता नहीं! तुम अब एक दिन के लिये भी कहीं नहीं जा सकती। खेल-कूद और घूमने में तुम्हारा मन खूब लगता है। पारसाल सातवें में फेल हुई तब प्रमोशन (तरक्की) दिलवाया और इस साल भी पढ़ाई मन लगाकर नहीं कर रही है। ट्यूटर बेचारा सुबह-शाम आता है, लेकिन तुम जी चुराती हो। इस वर्ष भी फेल होना है क्या? नहीं! कहीं नहीं जाओगी।”

इस पर कान्ता ने मुँह बना लिया, और गोपाल मुस्करा दिया। वह बोला कान्ता को प्रेमपूर्ण शब्दों में समझाता हुआ—“कान्ता, तुम्हारे भइया ठीक ही तो कहते हैं। तुम्हें पढ़ने में मन लगाना चाहिये। कोई बात नहीं! इम्तहान दे लो। फिर गर्मी की छुट्टियों में मैं तुम्हें लखनऊ बुला लूँगा। जब तक जी चाहे रहना। तुम्हारा घर है।”

कान्ता को गोपाल की बातें भी अच्छी नहीं लगी। वह वहाँ से उठकर चली गई। वसुमती और बाबू श्यामलाल दोनों के सामने जब उसने अपना लखनऊ जाने वाला प्रस्ताव रखा तो उन लोगों ने भी वही बात कही जो सागर और गोपाल ने कही थी।

लगभग चार-पाँच दिन गोपाल सागर के घर रहा और फिर जब चला तो उसे अपने साथ लिवाता गया।

+

+

+

सागर ने लखनऊ पहुँचकर शेखर की तलाश की, गोपाल उसके साथ-साथ रहता। दोनों जानते थे कि वह अधिकांश रूप में लखनऊ में ही

रहता है। उसके मिलने के ठिकाने भी ये लोग जानते थे—काफी हाउस, बार, होटल, छविगृह और रेसकोर्स के मैदान में वह मिल सकता है। दोनों उसकी खोज में घूमते, पानी की तरह पैसा खर्च करते लेकिन, मिलने वाला नहीं मिलता। वह न जाने कहाँ खो गया था।

एक रात को जब सागर घूम फिर कर लौटा और भोजनोपरान्त चारपाई की शरण ली तो उसे ध्यान आया उमा का। वह सोचने लगा कि पता नहीं बेचारी उमा कैसी होगी। उसकी ससुराल वाले उसके साथ अच्छा व्यवहार नहीं करते होंगे, यह बिल्कुल सही है। एक वह है जो परवश जिन्दगी बिता रही है और एक है हमारे शेखर दादा जिनकी आजादी ऐसी है कि वे जहाँ मन होता है, घूमते हैं जो चाहते हैं सो करते हैं। वे पुरुष हैं, इसलिए उन्हें स्वतन्त्रता का अधिकार प्राप्त है, और उमा नारी है, इसलिए उसे बन्धन का वरदान मिला है। एक ओर कैद है दूसरी ओर आजादी। अच्छा दस्तूर है दुनिया का, कोई हँसता और कोई रोता है। किसी को मौत प्यारी है और कोई जिन्दगी से प्यार करता है।

सागर जब चिन्तन में खोता तो खोकर ही रह जाता। न जाने कितनी करुणा और कितनी दया थी उसके जी में। पराये दुखदर्द को देख सुनकर वह मोम जैसा पिघल जाता। वह इन्सान था कोमल हृदय वाला। उसके विचार ऐक्य की डोर में बँध जाना चाहते थे। लेकिन ससार चक्र उस एक-सूत्री डोर को छिन्न-भिन्न कर देता। डोरे अलग-अलग हो जाते। कोई टूट जाता, कोई हवा में उड़ जाता और कोई निरर्थक पदार्थ बनकर रह जाता। वह इससे बहुत दुखी होता और उसका मन कहने लगता कि न जाने संसार में शान्ति का साम्राज्य कब स्थापित होगा। कब स्वर्ण युग होगा और धरती पर अमृत की वर्षा होगी, वह स्वर्ग बन जायेगी और उसके वासी देवता।

१४

घुडदौड़ के मैदान में घोड़े दौड़ रहे थे। युवक-युवतियाँ वृद्ध-वृद्धाये और पुरुष आँखों पर दूरबीन लगाये बैठे घोड़ों की दौड़ देख रहे थे। समय सन्ध्या का था। सूरज अस्त हो रहा था और खुला आकाश दूर तक देखने में बहुत भला मालूम हो रहा था। कभी कोई घोड़ा जब आगे निकल जाता तो लोग तालियाँ बजाने लगते। वन्दरफुल एक्सीलेन्ट आदि के स्वर उच्चारित होने लगते। सागर भी बैठा था गोपाल के पास। एक घोड़ा जो सबसे आगे था उसका नाम था मारियो। उसके लिये न जाने कितने लोग उत्सुक हो रहे थे। वे सीट से उठकर खड़े हो जाते उछलने लगते और फिर बैठ जाते। दूरबीन उनकी आँखों पर चश्मे की तरह रह जाती।

ऐसी स्थिति थी उस घुडदौड़ के मैदान की, जहाँ सैकड़ों और हजारों के दाँव लग रहे थे। कोई बाजी जीत रहा था और कोई हार रहा था। कोई प्रफुल्लित था और कोई हार कर फिर लम्बा सा दाँव लगा रहा था। लेकिन न सागर खिलाड़ी था और न गोपाल। वे दोनों तमाशाई भी नहीं थे। टिकट के पैसे जरूर खर्च किये थे, वह भी इसलिये नहीं कि उनका मनोरंजन हो। वे आये थे शेखर की तलाश में कि शायद वह वहाँ मिल जाये।

सागर का ध्यान सामने घोड़ों की ओर न जाकर इधर-उधर भटक रहा था। वह ढूँढ़ रहा था अपने शेखर दादा को उस विशाल जन समूह में, जिसके कोलाहल से कानों के पर्दे फटे जा रहे थे। उसको कल कानपुर जाना था। लखनऊ आये कई दिन हो चुके थे। आज यह उसकी आखिरी कोशिश थी कि शायद शेखर यहाँ मिल जाये।

मन के बन्धन, तन के रिश्ते से बहुत सुदृढ़ होते हैं, वे कभी नहीं टूटते। लगन और निष्ठा हों तो वे दिन पर दिन और पुष्ट होते चले जाते हैं। श्रद्धा लगन और विश्वास, इनका आश्रय लेकर ही तो आदमी जीता है। तभी तो चाहने वाले को भगवान भी मिल जाते हैं। और आठम्बर दिखाते वालों को माँगने से भीख भी नहीं मिलती। दुनिया अपने उसूलों पर कायम

है। आदमी भ्रम में तभी पड़ता है जब वह संसार के नियमों का उल्लंघन कर चलने का प्रयत्न करता है। सागर में सच्ची लगन थी। वह शेखर को बहुत चाहता था। उसे लगन लग रही थी कि काश दादा मिल जाते और हम दोनों साथ-साथ घर जाते।

सहसा सागर की दृष्टि पीछे की ओर गई। उसने देखा कि आँखों पर दूरबीन लगाये शेखर बैठा है। वह घोड़ों की दौड़ देखने में व्यस्त है। उसके कंधे पर हाथ रखे बगल में ही बैठी है एक एंग्लो इण्डियन लड़की जो आँखों पर काला चश्मा चढ़ाये है। उसके बाल अँगरेजी ढंग से कटे हैं। वह स्कर्ट और ब्लाउज पहने है। वह हँस रही है। बातें कर रही है और शेखर अपनी धुन में मग्न है। सागर वहाँ से उठा। उसने गोपाल को इशारा किया और बतलाया कि देखो पीछे शेखर दादा बैठे हैं। उनके साथ एक बला भी है। अजीब आदमी है दादा। जाति-कुजाति के साथ डोलते-फिरते हैं। उन्हें अपने ब्राह्मणत्व का तनिक भी ख्याल नहीं रह गया है।

दोनों मित्र शेखर के पास पहुँचे। उनको देखते ही वह जैसे पेड़ पर से गिर पड़ा और अपने कंधे पर रखा हुआ उस एंग्लो इण्डियन बाला का हाथ झटक कर हटाता हुआ बोला—“ओह ! ब्लडी फूल।”

वह लड़की चौककर शेखर का मुँह देखने लगी और तपाक से बोली—“ऐ, क्या कहता है तुम ! हम तुमको लव करता है और तुम ऐसी बात बोलता है। डालिङ्ग.....।”

“ओफ ! नाक मे दम कर रखा है।” यह कहकर शेखर उठ खड़ा हुआ और गोपाल तथा सागर के साथ आगे बढ़ने लगा। वह सोसायटी गर्ल वहाँ ठगी सी बैठी रह गई।

×

×

×

शेखर, गोपाल और सागर के साथ एक टैक्सी पर सवार हो हजरतगंज आया। वहाँ एक काफी हाउस में जा उसने बैरे को आर्डर दिया। आलू, चाय, समोसे, हरी मटर तली हुई और चाय की ट्रे सामने आ गई।

सब लोग खाने लगे । उनमें आपस में वार्ता चल रही थी । सागर कह रहा था—“शेखर दादा, मैं कई दिनों से आपकी तलाश में था । मेरे बड़े भाग्य जो आज आप मिल गये । अब तो आपको कानपुर चलना ही पड़ेगा ।”

“क्यों नहीं ! क्यों नहीं सागर ! छोटा भाई बड़े भाई को बुलाने आये और वह न जाये भला यह कैसे हो सकता है । मैं जरूर चलूँगा ; लेकिन अभी नहीं । मैं……”

शेखर की बात काटता हुआ सागर रुष्ट होकर बोल उठा—“तुम्हारी ‘लेकिन’ से ही दादा मुझे बहुत डर लगता है । मैं कुछ भी नहीं सुनूँगा, आपको जरूर ले चलूँगा । आप कुछ भी कहे ।”

शेखर कुछ कहना चाहता था पर इसके पहले ही गोपाल सागर के समर्थन में कहने लगा—“हाँ शेखर दादा ! आपकी आजाद जिन्दगी कुछ मेरी समझ में नहीं आई । चाचा जी (बाबू इयामलाल) आपको कितना चाहते हैं । चाची जी आप पर जान देती है और कान्ता तो हमेशा यही रट लगाये रहती है कि हमारे शेखर दादा नहीं आये । पता नहीं कहाँ होंगे, कभी घर की सुध नहीं लेते । आप कल अवश्य जाइये सागर के साथ ।”

शेखर ने जब देखा कि सागर और गोपाल सलाह करके आये हैं । और ये मुझे ही नहीं जाने देंगे तो वह दुनियादारी पर उतर आया और मीठी-मीठी बातें करने लगा, “कौसी बातें करते हो, गोपाल । मैं क्या तुम्हें कोई गैर समझता हूँ । कल मेरठ गया था आज ही सुबह आया हूँ । जी ऊबा तो घुड़दौड़ देखने चला आया । वहाँ तुम लोग मिल गये । सोचा था मैंने कि आज रात को तुम्हारे घर आऊँगा । मेरा अब बाहर मन नहीं लगता । महीने दो महीने कानपुर में चाचा जी के पास रहूँगा । आजकल मैं कमीशन एजेंट हूँ यही धन्धा करता हूँ । अभी चलता मैं तुम्हारे साथ ; लेकिन एक जगह जाना है वहाँ कमीशन के रुपये बाकी हैं । अगर समय पर न पहुँचा तो पैसे मारे जायेंगे और व्यापारी चला जायेगा । बस । वहाँ से फुरसत पाते ही मैं तुम्हारे यहाँ आ जाऊँगा । तुम लोग घर चलो, मैं जरूर आऊँगा और खाना तुम्हारे साथ ही खाऊँगा ।”

नाश्ता समाप्त हो चुका था। अब तीनों चाय की चुस्कियाँ ले रहे थे शेखर की बातें सुन सागर बहुत उदास हो गया था। वह बोला धीरे से दुखी स्वर में—“दादा किसी की बात नहीं मानते, मनमानी करते हैं। बाद में क्या आयेगे आप, मुझे यकीन नहीं होता। आप कमीशन एजेंटों करते हैं, मुझे यह बिल्कुल पसन्द नहीं। मैं कहता हूँ कि जरूरत क्या है ऐसे धन्धों की। अपने घर में क्या काम की कमी है। आपके अभाव में मैं अपने को अकेला पाता हूँ। आप...”

“तो यह बात है। मेरा भाई मुझसे रूठ गया। मैं मनाना जानता हूँ। हँसकर ही विदा करूँगा तुमको, सागर। तुम्हारा शेखर दादा दुनिया से झूठ बोले, लेकिन तुमसे सत्य ही कहेगा। चलो, मैं अभी आया एक घण्टे में।” यह कहकर शेखर ने भाई के सिर पर स्नेह भरा हाथ रख दिया और उँगलियों से उसके बाल सहलाने लगा।

गोपाल को सहसा एक युक्ति सूझ आई। वह बोला—“शेखर दादा ! चलिये, हम लोग भी आपके साथ चलते हैं। आप रुपये ले लीजिये फिर सीधे हमारे साथ घर चलिये।”

“यह नहीं हो सकता गोपाल। ग्राहक चोक जायेगा। व्यापारी का काम बनेगा और मेरे पैसे मुफ्त में मारे जायेगे। जानते नहीं, कमीशन एजेंटों दलाली का ही दूसरा नाम है। और दलाल का सौदा ग्राहक तथा व्यापारी से अकेले में ही पटता है। सबके सामने बात बिगड़ जाती है। ऐसी गल्ती जान-बूझकर नहीं करना चाहिये।” शेखर ने फौरन ही यह जवाब दिया।

सागर और गोपाल जब काफी हाउस के बाहर आये तो दोनों के चेहरे उदास थे और उनका शेखर दादा उनसे विदा ले रहा था।

१५

इन्सपेक्टर ने उमा को एक होटल में जाकर ठहराया। वहाँ एक-दो-तीन और इसी तरह पूरे पाँच दिन बीत गये; लेकिन न उसके माँ-बाप आये और न उनकी कोई खबर ही मिली। उसने इन्सपेक्टर से पूछा कि तार तो जल्दी पहुँचता है। जिस दिन मैं यहाँ आई थी उसी रात को आपने तार दे दिया था फिर माँ और पिताजी क्यों नहीं आये? क्या बात है? इस पर इन्सपेक्टर ने उसे बतलाया कि शहरो और कस्बों की बात दूसरी है। गाँव में तार भी देर से पहुँचता है। उन लोगों के आने में देर देख मैंने कल एक चिट्ठी लिख दी है। बस। समझ लो कि अब एक दो दिन के अन्दर वे जरूर आ जायेंगे।

इससे उमा को कुछ तसल्ली हुई। वह सोचने लगी कि वाकई यह इन्सपेक्टर बहुत नेक आदमी है। बेचारा कितना ध्यान रखता है मेरा। सबेरे ड्यूटी पर जाने से पहले मेरे पास आता है। दोपहर को भी मौका मारकर थोड़ी देर के लिये आ जाता है और रात को चाहे बारह ही क्यों न बज जाये, वह आता जरूर है। इस तरह मेरी खोज खबर लेता रहता है। मेरे खाने का उसे न जाने कितना ख्याल रहता है। बार-बार पूछता है कि उमा तुमने खाना अभी खाया या नहीं।

उमा कमरे में अकेले बैठे-बैठे ऊब जाती। दिन उससे काटे नहीं कटता और रात तो बहुत बड़ी हो जाती थी। वह हमेशा सोचती रहती। कभी माँ-बाप के प्रति उसके विचार दौड़ते भटकते। कभी ससुराल की याद उसमें एक कम्पन भर देती। वह दहल जाती और आँखें मूँद लेती। इन्सपेक्टर के प्रति उसको अतीव श्रद्धा थी और उसे विश्वास हो चला था कि एक दिन आयेगा जब उसकी जिन्दगी मुस्करायेगी। वह जीवन भर इन्सपेक्टर का आभार मानती रहेगी। और क्यों न माने इन्सपेक्टर ने उसके लिये क्या कुछ नहीं किया। उसके पास केवल एक धोती थी जो वह पहने थी। इन्सपेक्टर ने दो इकलाई की रँगिन साड़ियाँ लाकर उसको दीं। उनके साथ ही वह दो

रेडीमेड ब्ल.उज्ज भी ले आया। उमा कृतज्ञता में भर आई। उसे लगने लगा कि इन्स्पेक्टर साक्षान् भगवान है। तभी उसके साथ भलाई कर रहा है।

कुछ दिन और बीत गये। अब इन्स्पेक्टर ने उमा को उस होटल से ले जाकर दूसरे होटल में रखा। उसने स्थान परिवर्तन का कारण नहीं पूछा; क्योंकि वह जानती थी कि इन्स्पेक्टर जो कुछ कर रहा है वह उसके भले के लिये ही। हाँ अलबत्ता उसने इतना जरूर पूछा कि इन्स्पेक्टर साहब, पिता जी नहीं आये? कहीं किसी आफ़त में तो नहीं फँस गये।

अब इन्स्पेक्टर को बोलने का मौका मिल गया। वह अपनी बात कहने लगा—“हाँ, बहुत कुछ अंशो में तुम्हारा सोचना ठीक हो सकता है। क्या पता पण्डित रामनागयण ठीकमपुर पहुँचे हो। वहाँ तुम्हारे बाप से झगड़ा फ़साद किया हो। मामला उलझ गया हो। पुलिस थाने की नौबत आगई हो। क्योंकि रामनागयण पूरे गँवार है और गँवार जाहिल होता है। देख लो और दो एक दिन, फिर मैं वहाँ स्वयं जाऊँगा। तुमको गाँव साथ ले जाना ठीक नहीं। तिल का ताड़ बनता है। एक मिनट में बात पता नहीं कहां से कहां पहुँच जाती है। अभी सब कुछ अधकार में है। कुछ भी नहीं कहा जा सकता कि वे लोग क्यों नहीं आये और मामला क्या है?”

उमा ने इतना सुना तो वह गद्गद् हो गई और पुलकित होकर बोली—“हाँ! अगर वे लोग न आये तो फिर आप जरूर जाइये। मेरी समुराल वाले आदमी नहीं नाहर है। जरूर उन लोगों ने जाकर वहाँ कुछ ऊधम मचाया होगा।”

इस तरह जबजब उमा की तबियत ऊबती और वह घबड़ाती तब तब इन्स्पेक्टर उसे सान्त्वना देता, ढाढ़स बँधाता और सहानुभूति के घट उँडेलने लगता। उमा श्रद्धा-विभोर हो जाती। उसके हर प्रश्न का उत्तर उसी श्रद्धा के अन्दर निहित होता।

एक दिन शाम को जब इन्स्पेक्टर पहुँचा तो उमा ओंघा मुँह किये चारपाई पर पड़ी सिसक रही थी। उसके आने की आहट पाते ही उठ बैठी

और आंचल से आंसू पोंछने लगी। इन्स्पेक्टर उसके पास बैठ गया। और चिन्ताकुल हो उससे पूछने लगा—“क्या बात है, उमा ? तुम रो क्यों रही हो?”

“कुछ नहीं। यों ही माँ-बाप की याद आगई थी। मन भर आया और आंसू रोके नहीं रुके। तभी रोने लगी। इसके अलावा आज सबेरे से सिर में बड़ा दर्द है। सोचती हूँ कि सोऊँगी तो ठीक हो जायेगा।”

इतना सुनते ही इन्स्पेक्टर उसकी मीठा भर्त्सना करता हुआ बोल उठा—“वाह ! तुम भी कैसी अजीब पागल हो। तकलीफ हो तो उसे छिपाना नहीं चाहिये और न यह सोचकर टालना चाहिये कि दवा की क्या जरूरत है तबियत अपने आप ही ठीक हो जायेगी। अच्छा यह बनाओ आज दोपहर को खाना खाया या नहीं। देखो तो चेहरा कैसा हो गया है।”

उमा का मन हुआ कि इन्स्पेक्टर के पैरो पर माथा टेक दे। सचमुच वह दया का सागर है और उसका नाम भी कितना प्यारा है। जगदीश ! मतलब जगत का ईश्वर। वह बोली—“हाँ थोड़ा सा खाया था, अच्छा नहीं थी। जब सोऊँगी दर्द दूर हो जायेगा। सबेरे भली चगी नजर आऊँगी।”

“नहीं, ऐसा नहीं। मैं अभी जाकर दवा लाता हूँ। तुम....।”

इन्स्पेक्टर यह कहकर उठ खड़ा हुआ और जल्दी-जल्दी बाहर जाने लगा। उमा ने उसे टोका वह बोली जोर देकर—“मुनिये, कहाँ जाने है ? क्या होगा दवा का ! आइये.....।”

लेकिन इन्स्पेक्टर चलता गया और कहता गया—“दर्द बाती से दूर नहीं होता, उमा ! मैं दवा लेकर अभी आता हूँ।”

इन्स्पेक्टर चला गया और उमा फिर सोचने लगी कि आदमी चाहे जितना पुण्य कमाए और चाहे जितना पाप। नर्क तथा स्वर्ग दोनों यही धरती पर हैं। जो भलाई करता है उसकी नाव पार लग जाती है, जो कुटिल कर्म करता है वह जीते जी नर्क भोगता है। एक है मेरे समुद्र, मैं कहती हूँ कि उनकी बहुत बुरी गत होगी आखिर में। और इन्स्पेक्टर, इसे तो अमर होना चाहिये। काश ! यदि मेरे पास अमर फल होता तो मैं उसे खिला देती और वह अमर हो जाता।

रात आगे बढ़ रही थी। उमा सोच रही थी। कमरे के किवाड़ खुले थे। दरवाजे पर चिक पड़ी थी। वह देख रही थी एकटक उसी ओर कि इन्स्पेक्टर मेरे लिये दवा लेने गया है, अभी आता होगा।

१६

थोड़ी देर बाद इन्स्पेक्टर लौट आया। उसके हाथ में एक शीशी थी करीब बालिशत भर लम्बी, चौड़ी चपटी सी। दवा का रंग सफेद था पानी की तरह। उसने थोड़ी सी औषधि गिलास में डाली, फिर पानी मिला गिलास उमा की ओर बढ़ाता हुआ बोला—“लो पी जाओ, उमा ! अभी दर्द दूर होता है।”

उमा ने गिलास हाथ में लिया और सकुचते-सकुचते उसे होठों से लगाया। एक घूंट अभी हलक से नीचे उतरा कि वह चौक गई और गिलास मेज पर रख मुँह बनाने लगी।

“यह क्या उमा ? सब पी जाओ, तुमने रख क्यों दी ? पूरी खुराक नहीं पहुँचेगी तो फिर असर क्या होगा। कुछ थोड़ी सी कड़ुवी जरूर है, लो और पानी मिला लो।” यह कहने के साथ ही इन्स्पेक्टर पानी से भरा शीशे का जग उठा थोड़ा सा पानी गिलास में डालता हुआ बोला—“बस, आँखें मूँदकर पी जाओ। दवा कड़ुवी नहीं तो क्या भीठी होती है।”

किसी प्रकार घट्ट-घट्ट करके उमा वह सब दवा पी गई। इन्स्पेक्टर उसके पास बैठा था। वह इधर-उधर की बातें कर रहा था। न जाने क्यों उसकी निगाह बार-बार घड़ी पर जाती। लगभग पन्द्रह मिनट बाद उमा का

चहरा खिल उठा। वह उससे हँस-हँस कर बातें करने लगी। उसने कहा कि अरे इस दवा ने तो जादू जैसा काम किया। अब मामूली सा दर्द रह गया है। क्या नाम है इसका? बड़ी अच्छी चीज है।

“बेशक उमा, क्या करोगी नाम पूछकर। लो, थोड़ी सी और लो।” यह कहने के साथ इन्सपेक्टर ने थोड़ी सी दवा गिलास में डालकर उसको दी। उमा इन्कार नहीं कर पायी, वह पी गई। थोड़ी देर बाद ही उसके चहरे की रंगत बदलने लगी। वह बैठी थी और उसके सामने लग रहा था आदम-कद आइना। इन्सपेक्टर देख रहा था कि गोरी उमा हरी-साड़ी में लिपटी कितनी सुन्दर लगती है। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें उसके गोलमटोल चहरे में चार चाँद लगा रही हैं। उसकी सफेद पुतलियाँ गुलाबी हो रही हैं। चहरे पर आव मालूम होती है। सचमुच उमा अनिन्द्य सुन्दरी है। इसे ही कहते हैं रूपसी और रूप की खान।

और उमा, वह अपना दर्द भूल गई थी। इन्सपेक्टर ने उसके सामने खाने का प्रस्ताव रखा तो वह जल्दी से बोल उठी—“हाँ! हाँ! जरूर खाऊँगी।”

बस। फिर क्या था इन्सपेक्टर ने घंटी बजाई, बैरा हाजिर हो गया। आज्ञा पाते ही उसने थोड़ी देर में दो थालियाँ लाकर सामने मेज पर रख दी। इस समय उमा यह भूल ही गई थी कि वह एक गैर मर्द के साथ बैठी खा रही है।

खाना चलना रहा। दोनों में बातें होती रही। इसके बाद इन्सपेक्टर ने पान दिये। उमा ने वे भी खाये और फिर वह बातों में ऐसी खोई कि बारह बज गये और उसकी बातें समाप्त नहीं हुई। उसके सिर में मामूली सा दर्द बाकी था। उसने इन्सपेक्टर से कहा। इस पर इन्सपेक्टर ने उसे थोड़ी सी दवा और पिला दी।

अब रंगत बदलने लगी। रात सो रही थी। आसमान पर चाँद सितारे जाग रहे थे। उमा नशे में थी, नकली इन्सपेक्टर शेखर ने उसे दवा की दजाय ब्रान्डी पिलाई थी।

नीच प्रकृति और कुत्सित विचारों वाला शेखर ही इन्सपेक्टर बना था। वह अपनी चाल में कामयाब हुआ और उमा को यहाँ तक ले आया। यद्यपि बिड़िया जाल में फँस चुकी थी, लेकिन फिर भी वह उसे बहला रहा था। वह झूठ बोलता रहा। उसने न तो उमा के माँ-बाप को तार ही दिया और न चिट्ठी लिखी।

जब बाबू श्यामलाल के बड़े भाई का देहान्त हुआ तभी से शेखर ने खुलकर खेलना शुरू किया। माँ पहले ही परलोक जा चुकी थी। बाबू श्यामलाल और बसुमती अपने घर में रहते। शेखर अकेला था। वह जुमा खेलता, सुरा-पान करता और कुछ ऐसे लोगों की संगति में पड़ गया जो बहुत ही ऊँचे ढँग के ठग थे। ऐयाशी में मकान बिक गया व बैंक बैलेन्स खत्म हो गया तब वह अपनी ठग विद्या पर जीवित रहने लगा। उसके चाचा चाची और सागर जोर देते कि जो हुआ सो हुआ। अब शेखर घर में आकर रहो। यहाँ का काम देखो। अपनी गलतियों को भूल जाओ। इन्सान से ही गलतियाँ होती हैं।

लेकिन शेखर आवाारा हो गया था। उसकी जब में सैकड़ों रुपये पड़े रहते और देखने सुनने में वह एक अच्छा-खासा रईस मालूम होता था। कानपुर वह बहुत कम आता, अधिकांश लखनऊ में रहता था। वहाँ जितनी सोसाइटी-गर्ल थी वे सब उसे जानती थी। और वेश्यायें भी उसे अच्छी तरह पहचानती थी। गुडों की जमात में वह सबका अगुआ था। इसके अतिरिक्त वह स्त्रियों के क्रय-विक्रय में भी भाग लेता, अपनी दलाली खाता। उसका रहने का कोई भी कायम मुकाम नहीं था, वह अपने तई पूर्णतया स्वतन्त्र था, जहाँ चाहता घूमता और जो चाहता करता।

×

×

×

मदहोश उमा की आँखें अंगूरी जैसी गुलाबी लाल हो रही थीं। शिष्टता और अशिष्टता का अन्तर वह भूल चुकी थी। उसे सब कुछ नया-नया लग रहा था कि मैं जमीन पर नहीं आसमान पर उड़ी जा रही हूँ। सब कुछ मिलाकर वह बहुत खुश थी। इन्सपेक्टर कुर्सी से उठ चारपाई पर उसके पास जाकर बैठ गया। वह बैठी रही, न शिष्टकी और न संकोच किया।

शेखर का साहस आगे बढ़ रहा था। एक नागिन सी काली लट उमा

के गोरे कपोल पर खेल रही थी। उसने उसे स्पर्श किया। उमा मुस्कराती रही। उसने लट उठाकर ठीक करदी।

इसके बाद शेखर ने उसे थोड़ी सी सुरा और पिलाई। वह खुद भी पैग पर पैग चढ़ाता गया। उमा नशे में धुत हो गई पर शेखर का नशा काबू में रहा। फिर उस रात अनजाने में धोखा देकर उसने उस अबला का सतीत्व नष्ट कर दिया।

सबरे उमा देर तक सोती रही। जब उसकी आँखें खुली तो इन्स्पेक्टर वहाँ नहीं था।

१७

उमा चारपाई पर बैठी थी। उसकी आँखों में जलन थी, मुँह कड़ुवा कड़ुवा सा हो रहा था, जमुहाइयाँ आ रही थी और सारी देह टूट रही थी। उसके अंग प्रत्यंग में फुड़ियाँ जैसी तपकन हो रही थी। उसने देखा कमरे के किवाड़ भिड़ रहे हैं और इन्स्पेक्टर चला गया है। फिर उसने अपनी सूरत आइने में देखी। लगता था कि मोती का पानी उतर गया है। उसकी आव मन्द पड़ गई है।

रात की सारी घटनायें उमा को एक-एक करके याद आने लगी। उसे यहाँ तक याद था कि उसने इन्स्पेक्टर के साथ खाना खाया। इसके बाद उसके सिर में पुनः दर्द हुआ। उसने थोड़ी सी दवा और पी। बाद में क्या हुआ। यह उसे लाख कोशिश करने पर भी स्मरण नहीं आ रहा

था। उसका बिछोना अस्त-व्यस्त हो रहा था। उसके कपड़ों की भी वही दशा थी। वह समझ गई कि यह इन्सपेक्टर नहीं कोई चारसौवीसिया है। इसने मुझे दवा के धोखे में शराब पिला दी। मुझे याद नहीं आता है क्योंकि तब मैं नशे में थी। इन्सपेक्टर मेरे शरीर से जरूर खेला, इसमें कोई सन्देह नहीं। मैं एक गलत आदमी के चक्कर में फँस गई। जाना नहीं जाता है कि किसके मन में क्या है। मैं जगदीश को देवता समझती थी और वह राक्षस निकला।

उमा सोच रही थी, उसके सिर में धमक हो रही थी और दिमाग की सब नसे जैसे फटी जा रही थी। हलक सूख रहा था। वह उठी, किवाड़ खोले बाहर गई। नल पर जाकर मुँह हाथ धोया और पानी से जग भर लाई। पानी पीने के बाद उसका चित्त कुछ स्थिर हुआ तो चुपचाप लेट रही। उसे स्वयं अपने पर क्रोध आ रहा था कि उसने इन्सपेक्टर की बात क्यों मानी। उसके साथ क्यों चली आई? अब पता नहीं वह उसकी क्या गति करे। उसके पेट में डाढ़ी है। वह छिपा रुस्तम निकला। ससुराल की यातना भली थी। यह जिन्दगी बेहमाई की है। अगर मेरा नसीब ही खोटा न होना तो ये दिन क्यों देखने पड़ते।

नौ बज गये। बैरे ने आकर पूछा—“चाय लाऊँ बीबी जी?”

यद्यपि उमा की इच्छा बिल्कुल नहीं थी; लेकिन फिर भी यह सोचकर उसने हाँ कर दी कि शायद चाय से सिर दर्द में कुछ आराम मिले। चाय आ गई। उसने धीरे-धीरे पी और फिर आखे मूदकर लेट रही। दोपहर को उसने खाना नहीं खाया। बैरे से तबियत खराब होने का बहाना कर दिया।

करीब दो बजे इन्सपेक्टर आया और आते ही बोला—“कैसे सुस्त लेटी; हो उमा? क्या सोच रही हो? यह देखो मैं तुम्हारे लिये क्या लाया हूँ? यह कहते-कहते वह उसके पास जाकर बैठ गया और साड़ी का डिब्बा खोलकर दिखलाने लगा। जार्जेंट की एक फीरोजी साड़ी थी। उसमें सलमे-सितारे टँक रहे थे। उसने साड़ी उमा की ओर बढ़ा दी।

उमा बिजली की तरह उठी। वह नीचे खड़ी हो गई और साड़ी दूर

फैंक दी। फिर क्रोध तथा घृणा मिश्रित शब्दों में उसे धिक्कारती हुई बोली—
“जगदीश, तुम इन्सान नहीं हैवान हो। तुम इन्सपेक्टर नहीं कोई चारसी-
बीसिया हो। मुझे नहीं चाहिये साड़ी। इसमें आग लगादो और दूर हो जाओ
मेरी नजरों के सामने से। मैं तुम्हें शरीफ समझती थी; लेकिन तुम जलील
निकले।”

अब शेखर का माथा ठिनका। वह समझ गया कि उमा उसके असली
रूप को पहचान गई है। फिर भी वह सम्हला और परिस्थिति सुधारने के
लिये हँस कर बोला—“क्या बात है, उमा? बहुत नाराज मालूम होती
हो। किसी ने कुछ कहा है क्या? या मुझसे कोई भूल हो गई। यहाँ आओ,
मेरे पास बैठो।”

यह कहकर शेखर उमा की ओर लपका और चाहा कि उसकी बाँह
पकड़ ले तब-तक उमा ने उसके गाल पर एक भरपूर थप्पड़ जमा दिया और
दाँत पीसकर बोली—“दूर रह नाच नहीं तो मैं तेरा खून पी लूंगी। तू ढोंगी
है, बहुरूपिया है। मैं अभी हल्ला मचाती हूँ।” यह कहकर उसने जैसे ही
चिल्लाने की कोशिश की। बैसे ही शेखर ने उसके मुँह पर हाथ रख दिया
और फोरन ही तेवर बदल लिये, फिर कहने लगा—“हल्ला मचाकर तुम बच
जाओगी और मैं फंस जाऊँगा, यह तुम्हारी भूल है, उमा। मैं अगर चाहूँ तो
अभी जाकर होटल के मैनेजर से कह दूँ कि तुम एक आवारा और बदचलन
औरत हो। अपनी समुराल से छिपकर आ गई हो। पुलिस में खबर होगी और
वह तुमको ले जायेगी। सोच लो सौदा बुरा नहीं है।”

उमा गुस्से से पागल हो रही थी। उसके नथुनों के स्वर तेजी से चल
रहे थे। उसने आब गिना न ताव तड़ातड़ इन्सपेक्टर के गालों पर थप्पड़
लगाने लगी। वह गालियाँ बक रही थी और उस पर अपना क्रोध उतार
रही थी। अब शेखर भी बेकाबू हो उठा। उसने उमा को फर्स पर पटक
दिया और दोनों हाथ एक घुटने के नीचे दाब उसके मुँह पर कसकर रुमाल
बाँध दिये। फिर उसने अपनी पैंट की जेब से चमड़े का एक हन्टर निकाला।
उमा उठ कर बाहर की ओर भागी तो उसने जल्दी से कुन्डी बन्द कर ली

और उसको अपनी और खीच सड़ासड़ हन्टर बरसाने लगा। वह कसाई की तरह उसे पीट रहा था और कह रहा था—“मार से भूत डरते हैं। देखू तुम काबू में कैसे नहीं आती हो। अगर तनिक भी मेरे खिलाफ जवान खोली तो तुम्हें गारत कर दूंगा। जैसा तुम समझती हो मैं वैसा नहीं हूँ। जब जब फन सामने होता है तो स्वाद जरूर चखा जाता है। तुम खूनसूरत हो और जवान हो। मेरी बात मानोगी तो तुम्हें जिन्दगी भर साथ रखूंगा नहीं तो छोड़ दूंगा ऐसे गुन्डे, बदमाशों के बीच जो तुम्हें कोठे पर बैठायेँगे और तुमसे पेशा करवायेँगे।”

उमा शिथिल पड़ गई थी। वह उफ तक नहीं कर सकती; क्योंकि उसका मुँह बँधा था। उसका दम घुट रहा था और चमड़े का हन्टर उसकी चमड़ी उधेड़ रहा था। नौबत यहाँ तक आगई कि वह बेहोश हो गई और शेखर का हाथ बन्द नहीं हुआ। जब उस निर्दयी ने स्वयं देखा कि उस अबला की आँखें बन्द हैं और वह निर्जीव सी हो गई है तो उसने हन्टर जब में डाल लिया। कुछ देर तक वह खड़ा-खड़ा सोचना रहा। फिर दरवाजे की ओर चला तो कुछ ख्याल आया। उसने उमा के मुँह पर का कपड़ा खोल दिया। चारपाई का बिस्तर ठीक किया। उस पर उसे लिटा कर बाहर चला आया।

जब शेखर होटल के जीने की सीढ़ियाँ उतर रहा था तो उसका मन कह रहा था कि तुमने यह अच्छा नहीं किया शेखर जो उमा को इतनी निर्दयता से पीटा। हर कमजोर विवश हो जाता है। औरत जाति थी, डांट फटकार ही उसके लिये काफी थी। दूसरी तरकीबे काम में लाई जा सकती थीं, जिससे वह काबू में आकर रहती। स्त्री जब एकबार पतित हो जाती है तो फिर वह पाक दामन नहीं बन सकती। वह गिरती ही चली जाती है। वह कठपुतली है आदमी के हाथों की। वह उस पर खुलकर शासन करता है।

शेखर और प्रागे बढ़ा, सड़क पर आया। तबियत उसकी मुदी-मुदी सी हो रही थी। सामने एक बार था। वह इस समय खुला था। उसने जाकर वही शरण ली। दो पैंग द्विस्की के पी उसने सिगरेट जलाई, सुहर आया। तब वह निकल गया तस्वीरघर की ओर। सामने छोटा इमामबाड़ा था।

तस्वीरघर के निकट दूर तक फैला था लम्बा-चौड़ा हरी घास का मैदान । वह आकर घास के उस कोमल बिछोने पर बैठ गया और सोचने लगा कि जब उमा को चेत होगा तो अगर कहीं उसने होटल के मैनेजर से सब कुछ कह दिया, या चुपचाप चली गई और कोतवाली पहुँची तो क्या होगा ?

लेकिन थोड़ी बाद ही शेखर दूसरी बात सोचने लगा कि औरत कुछ नहीं कर सकती मर्द का । मर्द जबर होता है । तभी तो वह उस पर जुल्म और ज्यादाती करता है । घंटों तक वह सम्भूल ही नहीं पायेगी । मैंने उसकी देह काली कर दी है । ऐसी मार उस पर जिन्दगी में और कभी नहीं पड़ी होगी । चलो, मुझे यहाँ समय खराब नहीं करना चाहिये । जाकर उसकी गति-विधि देखूँ कि क्या करती है, किस तरह पेश आती है ।

ऐसा विचार कर शेखर वहाँ से उठा । पैदल चल सड़क पर आया । और एक रिक्शे पर बैठ गया । रिक्शा चल पड़ा उसी होटल की ओर जिसमें संसार की सताई एक दुखियारी कैद थी । उसका नाम था उमा ।

१८

शेखर जब होटल पहुँचा तो उमा आखे खोले चुपचाप चारपाई पर लेटी थी । उसने उसे देखते ही पलकें मूँद ली और चाहा कि करवट बदगकर लेट जाये; लेकिन ऐसा नहीं कर सकी । उसकी देह ने उसका साथ नहीं दिया । उसमें असह्य पीड़ा थी और जहाँ तहाँ खाल फट गई थी, जिससे चिलकन हो रही थी ।

शेखर दो मिनट तक उमा के सामने खड़ा रहा। वह कुछ नहीं बोला। उसने यह तो अनुमान लगा ही लिया कि उमा उस पर बेहद नाराज है। वह उससे बात तो करना दूर रहा उसे देखना भी नहीं चाहती। इसीलिये आँखें मीच ली है। वह धीरे-धीरे आगे बढ़ा और चारपाई के निकट पहुँच उसका कन्धा हिलाता हुआ पश्चाताप भरे स्वर में बोला—“मुझे बहुत अफसोस है उमा जो तुम पर हाथ उठाया। माफ़ कर दो और मुझे गलत न समझो। मैं…………।”

शेखर की बात बीच में ही रह गई; क्योंकि इस बीच जबरदस्ती उमा ने करवट बदलने की कोशिश की तो पीड़ा सह्य नहीं हुई और उसके मुँह से एक हल्की सी चीख निकल गई। शेखर ने जल्दी से उसे सम्हाला और बोला—“ठहरो उमा, मैं अभी आता हूँ, तुम्हें बहुत तकलीफ है।”

शेखर कमरे के बाहर जा चुका था। उमा का अन्तर्द्वन्द्व चल रहा था कि चूहे को मारकर जगदीश उसे गोबर सुँघाने की कोशिश कर रहा है। मैं न घर की रही और न घाट की। माँ-बाप के पास लौटकर जाती हूँ तो शायद वे भी एतराज करेंगे; क्योंकि मैं घर से बाहर रह चुकी हूँ और ससुराल जाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता है। वे लोग मुझे देखते ही किवाड़ बन्द कर लेंगे। तब मेरा कुसूर यह था कि मैं विधवा थी और अब गुनाह यह होगा कि मैं पतिता हूँ। क्या करूँ? जगदीश का कहना मानती हूँ तो भविष्य अंधकारमय नजर आता है और अगर आत्म-हत्या की कोशिश करती हूँ तो वह भी सहज नहीं सुलभ हो सकती। मुझे क्या करना है और कौन सा कदम उठाना चाहिये यह कुछ भी समझ में नहीं आता, मैं हैरान हूँ।

उमा उधेड़ बुन में व्यस्त थी। वह किसी भी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच रही थी, सहमा थोड़ी देर बाद ही शेखर आ गया। उसने थोड़ी सी ब्रान्डी गिलास में डाली और फिर पानी मिला उमा की ओर बढ़ाता हुआ बोला—“लो उमा यह दवा नहीं ब्रान्डी है। कल मैं तुम से झूठ बोला था। इसको पियो, नहीं तो दर्द से यों ही मछली की तरह तड़पती रहोगी। मैं बुरा जरूर हूँ; लेकिन मेरे अन्दर भी दया है और मैं भी इन्सान हूँ।”

किन्तु उमा ने आँखें नहीं खोली। वह निश्चेष्ट लेटी रही। तब शेखर ने पुनः उसका हाथ हिलाया। वह बोला—“उठो उमा, नादानी न करो। दुनिया में सब कुछ है। आदमी को दर्द मिलता है तो उसे प्यार भी मिलता है, सुख मिलता है, नभी आदमी हँसता है। तुम्हारे सामने अभी तक बहुत छोटी सी दुनिया रही है। मैं तुम्हें स्वर्ग की सैर कराऊँगा। न जाने क्यों, मैं कुछ भी नहीं बता सकता कि तुम्हारे प्रति मेरा आकर्षण क्यों बढ़ा और मैंने तुम्हारे सतीत्व से खेल खेला। लेकिन वायदा करता हूँ कि जिन्दगी भर साथ नहीं छोड़ूँगा। तुम्हें अपने घर में ले जाकर रखूँगा और तुम से व्याह कर लूँगा। मैं तुम्हारी नाव को बीच भँवर में डूबने नहीं दूँगा। मँझधार में पड़ी हुई किशती किनारे लग जायेगी और हमारा-तुम्हारा एक छोटा सा ससार बस जायेगा। तुम्हें मेरी मोगन्ध है उमा ! उठो ! और यह ब्राण्डी पी लो। सामने मेज पर बातल रखी है। थोड़ी सी बदन में भी मल लो। उठो।”

लेकिन उमा न हिली न डुली और न कुछ बोली ही। तब शेखर ने गिलास मेज पर रख दिया और दोनों हाथों से उसको उठाकर बैठाने लगा। उमा कराही। उसकी देह में तपकन हो रही थी। वह बैठ गई और धीरे से बोली—“मुझ पर रहम करने आये हो। तुम्हें मुझमें हमदर्दी है तो जाओ एक काम करो।”

“क्या ?” शेखर उत्सुक होकर फूल जैसा खिल उठा।

और उमा कहने लगी—“थोड़ा सा तीखा जहर ला दो और मुझे ले चलो गोमती के किनारे। वहाँ जहर खाकर मैं जल में समाधि ले लूँ। मैं...।”

यद्यपि शेखर को क्रोध तो बहुत आया; लेकिन वह उसे पी गया और धीरे से मुस्कराता हुआ बोला—“नहीं ! उमा नहीं ! मैंने तुमसे कहा कि मुझे क्षमा कर दो। मैं तुम्हें अमृत पिलाऊँगा। तुम्हें अपनी रानी बनाऊँगा। तुम नहीं जानती कि मुझे तुम कितनी प्रिय हो। यह पुराना दस्तूर है कि जो प्यार करता है वह जुल्म भी करता है और फिर क्रोध तो अन्धा होता ही है। लो उमा ! यह लो।”

यह कहने के साथ शेखर ने जबरदस्ती गिलास उमा के होठों से लगा दिया। उसके नथुनों में मदिरा की गंध समाने लगी। उसने गिलास हाथ में पकड़ा और दूर फेंक दिया, फिर बोली—‘मैं दारू नहीं पी सकती। यह मेरा स्त्री-धर्म नहीं कहता। और जो चाहो सजा दे लो; लेकिन इसके लिये मजबूर न करो।’

इस पर छूटते ही शेखर बोल उठा—“तो तुम्हें मजबूर कौन करता है, उमा। मैं तो तुम्हारे फायदे की बात कहता हूँ। तुमने अपने गाँव और कस्बे में देखा होगा कि चोट-मोच आ जाने पर लोग थोड़ी-सी शराब पीते भी हैं दवाई के बतौर और उसकी मालिश भी करते हैं। गिलास टूट गया कोई बात नहीं, दूसरा तो रखा है।”

शेखर ने पुनः गिलास भरा और उसे पिलाने की कोशिश की; लेकिन उमा राजी नहीं हुई। तब वह चला गया और फिर न उस रात को आया और न दूसरे ही दिन। उमा उसका इन्तजार करती रह गई। उसके मन में शका उत्पन्न होने लगी कि शायद जगदीश अब नहीं आयेगा।

१६

तीसरे दिन शेखर चुपचाप आकर उमा के सामने बैठ गया। वह भी बैठी रही। दोनों के बीच मौन व्यापार चलने लगा। थोड़ी देर तक यही स्थिति रही। फिर उमा ने ही स्वयं अपना मौन तोड़ा। वह बोली—“अब आये हो। न जाने तुम क्या चाहते हो मेरी समझ में नहीं आता। मुझ कहाँ से लाकर कहाँ डाल दिया है। क्या मैं यही बनी रहूँगी? मेरा जी उबता

है, कहाँ चली जाऊँ ? कैसे मन को समझाऊँ । तुमने मेरे सामने एक ऐसी समस्या खड़ी कर दी है जिसका न आदि है और न अन्त । मैं बहुत परेशान हूँ ।”

“परेशान तुम अपने आप ही होती हो । मैं तो कुछ नहीं कहता । हाँ अलबत्ता अगर तुम चाहो तो तुम्हें यहाँ से ले जाकर अपने घर में रख सकता हूँ । मेरे माँ-बाप यही शहर में रहते हैं । उनका कपड़े का बहुत बड़ा काम है । मैं उनका अकेला पुत्र हूँ । उनसे कह दूँगा कि मैंने एक विधवा से विवाह कर लिया है । वे मान जायेंगे ।”

शेखर की यह बात सुन उमा कुछ सोच में पड़ गई । वह तनिक देर बाद धीरे-धीरे बोली—“ठीक कहते हो । अब मेरी राह वही है जो तुम्हारी है । मैंके वालों को तुमने न तार दिया और न चिट्ठी लिखी, यह बिल्कुल सही है । इसके अलावा अब मैं वहाँ जाकर करूँगी भी क्या ? मेरा सतीत्व तुमने नष्ट किया है । अब तुम्हारे ही गले बँधूँगी । जैसे चाहो उस हालत में रखो ।”

“तो फिर ठीक है । तैयार रहना, मैं कल सबेरे दस बजे आकर तुम्हें यहाँ से ले जाऊँगा ।” यह कहकर शेखर मुस्कराया । उसने घण्टी बजाई । बैरा आया । उसे चाय और नाश्ता लाने का हुक्म मिला । थोड़ी देर बाद ही सब चीजें सामने आ गई ।

शेखर ने आग्रह किया । उमा खाने लगी दोनों नाश्ते के साथ-साथ बातें भी करते रहे । वे बड़ी दिलचस्प थीं और शेखर बहुत खुश था ।

उस रात को शेखर जब होटल से गया तो एक बज रहा था । उसके चेहरे पर खुशी नाच रही थी और पैर बहुत हल्के पड़ रहे थे—जैसे वह सड़क पर नहीं चल रहा था, आसमान में उड़ रहा हो ।

×

×

×

×

सबेरे उमा जल्दी उठी । वह नहा-धोकर तैयार हो गई और शेखर की राह देखने लगी । नियत समय पर वह आगया और आते ही बोला—

“चलो ! बाहर ताँगा खड़ा है । तुम तैयारी करो, मैं होटल का बिल चुकाकर अभी आता हूँ ।”

शेखर बिल चुकाने चला गया । उमा ज्यों की त्यों खड़ी रही । उसे तैयारी कुछ भी नहीं करनी थी । धोतियों की पोटली उसने मेज पर रख दी थी कि चलते समय ले लूँगी । शेखर जब वापस लौटा तो उसने वे दोनों धोतियाँ एक अखबार में लपेट उनका बन्डल सा बना लिया । दोनों नीचे उतरे, ताँगे पर बैठे और ताँगा चल पड़ा विपरीत दिशा की ओर ।

रास्ते भर शेखर और उमा में कोई बातें नहीं हुई । उमा संकोचवश चुप रही और शेखर ने जानबूझ कर बात नहीं की, क्योंकि ताँगे वाला उसके लिये एक गैर आदमी था और इन दोनों की बातें भेद-भरी थी ।

लालबाग के चौराहे को पार करता हुआ ताँगा उस ओर बढ़ने लगा जहाँ ईसाइयों की बस्ती थी । एक छोटे से घर के सामने जाकर ताँगा रुका । शेखर ने कहा—“उतरो उमा । घर आ गया ।”

उमा उतर पड़ी । वह मकान की गिरी-पड़ी हालत देखकर सोचने लगी कि क्या यही जगदीश का घर है ? वह तो कहता था कि मेरे बाप कपड़े का बहुत बड़ा कारबार करते हैं । जो लम्बा रोजगार करेगा, वह इस रद्दी मकान में रहेगा ? यह तो ताज्जुब है ।

ताँगा चला गया । उमा और शेखर अन्दर आये । घर में बिल्कुल सन्नाटा था । दो कमरे थे, एक छोटा सा आँगन इसके अतिरिक्त टट्टी और नल की भी सुविधा थी । उमा ने आश्चर्य से भरकर उससे चौंकता हुआ प्रश्न किया—“क्या यही तुम्हारा घर है ? यहाँ तो कोई नहीं है ।”

शेखर कुछ उदास हो गया और रोनी-सी सूरत बनाकर मन्द स्वर में बोला—“नहीं उमा ! यह मेरा घर नहीं है । यह तो किराये पर लिया है । अभी कुछ दिन इसी में रहो, फिर सब ठीक हो जायेगा । कल मैं घर गया था । पिताजी से मिला तो वे बहुत बिगड़े और कहने लगे कि चले जाओ यहाँ से । मैं तुम्हारी सूरत भी नहीं देखना चाहता । तभी मैंने उनसे अपनी बात नहीं कही । वे मुझ पर बहुत गुस्सा हैं, कि मैं घर में नहीं बैठता,

इवर-उधर घूमा करता हूँ। मेरी आवागर्दी माँ-बाप को अच्छी नहीं लगती। वे मुझे डाँटते-फटकाटते हैं और इसीलिये महीने-महीने दो-दो महीने तक घर नहीं जाता। अभी तुम यहीं रहो। आज ही मैं बड़े मुनीम से मिलूँगा। उसको सारी कहानी बताऊँगा। वह पिताजी को समझायेगा। फिर देख लेना एक दिन पिताजी और मुनीम तुम्हें स्वयं लेने आयेंगे। बस। वहीं से उमा, हम लोगों की तकदीर खुल जायेगी।”

उमा ने शेखर की बातें सुनीं। वह संतोष करके बैठ रही। शेखर अब रात को वही रहता। सबेरे चला जाता और दोपहर को फिर आ जाता। तीसरे पहर वह घूमने निकलता तो रात को दस बजे तक जरूर लौट आता। उसने कुछ जरूरत भर के वस्त्र ला दिये थे। उमा खाना स्वयं अपने हाथों बनाती। अक्सर दोपहर को और कभी-कभी रात को शेखर भी भोजन वहीं करता। इसमें उमा को ढाढ़स बँध रहा था कि जगदीश उसे छोड़ा नहीं देगा। उसने जो कहा है, करेगा।

२०

पंडित रामनारायण के कुल में दाग लग गया था। खानदान वालों ने उनका लोटा पानी बन्द कर दिया। टोले-मोहल्ले के लोग जिसे देखो वही कहता फिरता कि अरे रामनारायण की बहू भाग गई। वह सी० आई० डी० इन्स्पेक्टर कोई बना हुआ बहुरूपिया था। दोनों की पटरी बैठ गई और वह उसके साथ भाग गई। पता नहीं वह जाति का था कि कुजाति का। अब कौन पियेगा उनके घर में पानी। उनका तो बहिष्कार कर दिया गया है।

रामनारायण की गर्दन लच गई थी। उनकी आँखें अब जमीन पर ही देखतीं? वे घर से बाहर निकलते तो उन्हें हया मालूम होती। और जब अपनी इस समस्या के प्रति सोचते तो वे बहुत ही उलझ जाते। क्या नहीं किया उन्होंने। उमा की तलाश के लिये कोना-कोना छान मारा। उनके लड़के ने थाने में रिपोर्ट की। वहाँ मालूम हुआ कि यहाँ कोई भी सी० आई० डी० इन्स्पेक्टर नहीं आया। इसके बाद दोनों बाप-बेटे और कुछ पड़ोसी सीधे टीकमपुर गये। उमा के बाप के घर में वे लोग जबरदस्ती घुस गये। घर की तलाशी ली कि किस कोने में उनका चोर छिपा है। जब उनका सन्देह निर्मूल सिद्ध हुआ तो वे बौखला उठे और देखते ही देखते रामनारायण की अपने समझी से हाथापाई होने लगी। घर के बाहर चबूतरे पर हजूम लग गया। मामले को लोग समझने और सुनने लगे। जिन गाँव वालों ने पहली बार रामनारायण का साथ दिया था, वे ही अब उनके खिलाफ हो गये और कहने लगे कि जाइये! आप लोगों ने यहाँ पर व्यर्थ का हंगामा मचा रखा है। उमा के पिता इधर कई महीने हो गये एक दिन के लिये भी गाँव से बाहर नहीं गये, फिर यह कैसे मान लिया जाये कि वे, जाकर उमा को ले आये। आप की दूसरी बात भी बिलकुल झूठी है। उमा यहाँ आई ही नहीं। अगर वह आती तो हम लोग न देखते।

इस तरह शमिन्दा और जलील होकर रामनारायण सबके साथ वापस घर आये। यहाँ आकर फिर दौड़ भाग की; लेकिन खो गया सो खो गया। उसके चिन्ह भी दृष्टिगोचर नहीं हो रहे थे। रामनारायण की पाशविक वृत्ति अब पानी भर रही थी। वे मन ही मन कायल हो रहे थे। एक दिन उनके नाम अदालत से सम्मन आये। उनके समझी ने उन पर मुकदमा चला दिया था कि वे उसकी लड़की उमा को बलपूर्वक ले आये। फिर यहाँ लाकर कुछ दिन बाद यह हवा उड़ा दी कि वह किसी के साथ भाग गई। इसके पहले मैं लोगों से सुन चुका था कि वे मेरी लड़की को मार डालना चाहते थे और अगर ऐसा न कर सके तो उन्होंने उसे बेचने का इरादा कर रक्खा था।

अदालत में मुकदमा पेश था। रामनारायण के समझी अपनी कह चुके थे और रामनारायण सिटापिटा रहे थे। अपनी सफाई के सबूत में उनके

पास केवल उस सी० आई० डी० इन्स्पेक्टर की चिट्ठी थी जो उसने उनके नाम डाक द्वारा भेजी थी। जब मजिस्ट्रेट के सामने इन्स्पेक्टर की वह चिट्ठी पहुँची तो वह भी पशोपेश में पड़ गया। कोर्ट इन्स्पेक्टर की भी समझ में कुछ नहीं आया। एक, दो और तीन इस तरह तारीखें बढ़ी। न्यायाधीश ने उस इलाके की पुलिस को इत्तिला भेज दी कि उस नकली इन्स्पेक्टर का पता लगाया जाये। मुकदमा स्थगित कर दिया गया अनिश्चित समय के लिये।

मौत आई, और माथा चूम कर चली गई। जान बची लाखों पाये। किसी तरह रामनारायण के सिर पर से मुकदमे वाली बला टली। वे सोचने लगे कि मुझे अपने किये का बदला मिल रहा है। किसी पर अत्याचार करना अच्छा नहीं होता है। नेकी का फल मीठा होता है और बदी का कड़ुआ। बहू उमा के प्रति मेरे मन में बदी थी। वह पता नहीं कहाँ गई। उसी का यह अभिशाप है कि मेरे माथे पर बदनामी का टीका लग गया। अब देखो ऊँट किस करवट बैठता है? समाज ने अपना फैसला तो दे दिया, अब आगे इसकी युक्ति क्या निकालता है कि मैं अपने खानदान में फिर मिल सकूँ।

रामनारायण उमा के लिये सोचते कि मान लो इन्स्पेक्टर का पता चल गया और उमा मिल गई तो फिर उमका क्या होगा? मैं कैसे घर में घुसने दूँगा उसे। जाती-बिरादरी वाले यो ही बदनाम किये हैं फिर तो बहुत बड़ा उत्पात खड़ा कर देगे। और अगर उसका बाप उसे ले जाता है तो भी खतरा है कि वह उसका विधवा विवाह कर देगा। खैर देखा जायेगा जब जैसा मौका आयेगा। मेरी तो इच्छा है कि अब उमका पता न लगे यही बेहतर है; क्योंकि हवा चली थी चिनगारी उड़ गई। अब अगर वह मेरे आँगन में फिर आ गई तो शोला बनकर भड़केगी और घर को जलाकर खाक कर देगी।

आदमी जब एक गुनाह करता है तो उसके लिये सौ बहाने पहले से ही ढूँढ़ लेता है। अपना पल्ला बचाने की हर आदमी कोशिश करता है। सफलता असफलता उसके भाग्य पर निर्भर होती है। रामनारायण का भाग्य अँधेरे में भटक रहा था। बुढ़ापे में उनके मुँह पर जो कालिख लगी

थी वह लग गई। उनका पतन तो यहाँ तक हो चुका था कि वे लोगों से बात करते हिचकते और जान छुड़ाने की कोशिश करते। उनके मन में जो पाप समाया था उमा के लिये, उसने स्वयं उनको ही डस लिया। वे जीवन्मृता-वस्था में अन्दर ही अन्दर छटपटा रहे थे। उनके मर्म को कोई नहीं समझ पाता। सभी लोग उनकी ओर उँगली उठाते, कानाफूसी करते और वे शर्म से झुककर रह जाते।

२१

दिन बीत रहे थे और उमा पिंजड़े में कैद थी। वह शेखर पर पूर्णतया निर्भर होकर रह गई थी। शेखर जब शहर में रहता तब तो वह रात को भी घर में रहता, दिन को भी आता और जब वह कहीं बाहर चला जाता कई कई दिन के लिये तो उमा फड़फड़ाने लगती। वह सोचने लगती कि पता नहीं जगदीश कब आये। मैं न हँस सकती हूँ और न रो सकती हूँ। दोनों में ही भय है। आत्महत्या करने से भी अब डर लगता है क्योंकि मैं माँ बनने वाली हूँ। एक साथ दो हत्याएँ मुझसे नहीं होंगी। मैं विवश हूँ; क्या करूँ? यहाँ से भागकर जाऊँ भी तो कहाँ। मेरे लिये मेँके और सुसराल दोनों के दरवाजे बन्द हो चुके हैं। हिन्दू नारी एक बहुत बड़ा अभिशाप बन जाती है अपने समाज में, जब उसका पैर किसी कारणवश घर से बाहर निकल जाता है। मैं भी उसी श्रेणी में आ गई हूँ। समाज मुझे पतिता, कुल-कलकिनी और व्यभिचारिणी आदि की संज्ञायें देगा। ऐसे समाज से सूनापन ही भला है। मैं कहीं नहीं जाऊँगी। जगदीश के साथ ही रहूँगी। उसने मेरी

दुनिया बरबाद की है। मैं उसके दामन से लिपट जाऊँगी और उसे फिर कहीं नहीं जाने दूँगी।

और शेखर, उसके विचार बहुत कुछ बदल गये थे उमा के प्रति। उमा को इस घर में आये चार महीने बीत गये थे। अब अषाढ़ बरस रहा था। वह घर में अकेली रहती। अँधेरे में उसे डर लगता तो बत्ती जला लेती। शेखर ने रात को घर आना बिल्कुल बंद सा कर दिया था। दिन में भी वह बहुत कम आता, यही दूसरे तीसरे दिन और जब आता तो अकेला नहीं उसके साथ एक-दो आदमी जरूर होते। वे लोग आते और उमा को घूर-घूरकर देखते नीचे से ऊपर तक। पता नहीं उसमें क्या खोजते थे वे। उनकी निगाहे चोरों जैसी होती।

उमा यह सब परिवर्तन देखकर चकित हो रही थी। शेखर कभी अकेला नहीं आता जो वह उससे बात करे। खाने-पीने का सामान वह रख जाता और फिर बाहर से ताला बन्द कर चला जाता। उमा सख्त कैद में थी। वह घर से बाहर भी निकल नहीं सकती। दिन-रात अकेले बैठे-बैठे उसका जी ऊब जाता। वह रोती नो रोती ही रह जाती। आँचल आँसू पोंछते-पोछते भीग जाता और जब सोचती तो उसे तन-बदन की भी सुधि नहीं रहती। वह अपने मन की पीर पीने की अभ्यस्त हो गई थी। उसे लगता कि वह कुछ दिन में गूँगी हो जायेगी और साथ ही बहरी भी; क्योंकि न उसे बोलने को मिलता है और न कुछ सुनने को।

जो लोग शेखर के साथ आते और उमा को गौरपूर्वक देखते उनके लिये उमा ने यह अनुमान लगा रखा था कि शायद जगदीश की नीयत अच्छी नहीं है। मेरे साथ खिलवाड़ करके अभी उसका जी नहीं भरा। मालूम होता है कि वह मुझे इसी घर में बन्द रखेगा और पेशा करवायेगा। गैर लोगों के आने का यही मतलब हो सकता है। उसने मुझ पर खर्च किया है इसीलिये मेरी कमाई खायेगा।

उमा हर समय इसी प्रयत्न में रहती कि कब जगदीश आये और मैं उससे पूछू कि यह सब क्या है? लेकिन शेखर इतना मौका ही नहीं देता।

उसे जो चीज व सामान लाना होता उसी समय लिए आता जब लोगों के साथ आता। आखिर में एक दिन उमा ने लोगों के सामने ही उसे रोक लिया, जाने नहीं दिया। जब ये लोग चले गये तब उसने माथा टेक दिया शेखर के चरणों पर और रोकर बोली—“मैंने कौन कुसूर किया है ? मुझे किस बात की सजा दे रहे हो ? तुम घर नहीं आते, मैं यहाँ अकेली रहती हूँ, अकेले जी ऊबता है। और ये कौन लोग हैं, जो तुम्हारे साथ आते हैं। आज ही देखो वह मोटा तोंदियल मुझे न जाने कैसे देख रहा था। जैसे मैं हरजाई हूँ। यह क्या किया तुमने ? मुझे किस हक को पहुँचा दिया। मैं तुम्हारी गाय हूँ, मुझ पर रहम करो ? और इस जेल से आजादी दो कि मैं तुम्हारे साथ रहूँ और तुम्हारी सेवा कर सकूँ।”

शेखर ने उमा का सिर ऊपर उठाया और अपने रूमाल से उसके आँसू पोंछे, फिर सिर पर प्यार भरा हाथ फेरता हुआ मन्द-मन्द मुस्कराकर बोला—“बड़ी डरपोक हो, उमा। अरे ! इतना डर क्यों गई ? मैं घर नहीं आता हूँ, इसकी तुम्हें शिकायत है, वह दूर हो जायेगी। बस, हफ्ते दो हफ्ते की देर है। तुम्हें सुनकर खुशी होगी कि मैंने भी अपना अलग घन्घा शुरू कर दिया है, कमीशन एजेन्सी का काम करता हूँ। शहर से बाहर जाना पड़ता है इसीलिये घर नहीं आ पाता हूँ। जो लोग मेरे साथ आते हैं वे मेरे दोस्त हैं साथ के काम करने वाले। मैंने सबको बता रखा है कि उमा मेरी पत्नी है। तुम कुछ और न समझ बैठना। तुम्हारा जगदीश तुमसे दगा नहीं करेगा।”

शेखर की इन बातों ने उमा को बड़ा सन्तोष दिया। वह उसके प्रति विश्वास से भर आई कि जगदीश के कथन में तनिक भी मिथ्या का अंश नहीं है। वह जो कह रहा है, सब ठीक है।

थोड़ी देर तक शेखर वहाँ रहा। उमा ने कई दिन से खाना नहीं बनाया था। आज उसने आग्रह किया कि रसोई तैयार करो, मैं भी खाऊँगा। उमा को उसका यह आचरण बहुत अच्छा लगा। उसके हाथों में जैसे बिजली भर गई और वह जल्दी-जल्दी काम करने लगी। थोड़ी देर बाद शेखर यह

कहकर चला गया कि मैं अभी आता हूँ, उमा । थोड़ा-सा दही और कुछ अचार ले आऊँ ।

उमा राह देखती रही और शेखर नहीं आया । उसने किवाड़ों के पास जाकर देखा । वे बाहर से बन्द थे रोज की तरह । दोपहर से तीसरा पहर हो गया । फिर सूरज अस्ताचल की ओर चल दिया मगर शेखर नहीं आया, नहीं आया ।

२२

जब शेखर नहीं आया तो उमा फिर चौक गई । अब उसके मन में सन्देह घर कर गया कि जरूर कोई बात है तभी जगदीश मुझसे कतराता है । फूल खिलता है, देखने में सुन्दर लगता है । उसकी खुशबू फैलती है । लोग मुग्ध होकर उसके पास चले आते हैं । उसे देखते हैं, फिर तोड़ लेते हैं । वे उसे सूँघते और मुट्ठी में बन्द कर लेते हैं । उसके बाद फूल मुरझा जाता है । उसकी सुगन्ध नाममात्र को रह जाती है तो उसे फेंक देते और पैरों के नीचे रोंदते चले जाते हैं । मैं कुचला हुआ कुसुम हूँ । मेरी गन्ध चली गई । अब जगदीश अगर मुझसे आँखें फेरता है तो उसका कोई दोष नहीं ।

इस तरह सोचती थी उमा और शेखर मन के लड़कू खा रहा था । वह गुप्त रूप से सौदा कर रहा था उमा का । जो लोग उसके साथ उमा के घर जाते वे खरीददार होते थे । माल को देखकर वे दाम लगाते; लेकिन सौदा नहीं पटता; क्योंकि शेखर तीन हजार माँगता था । लोग हजार, पन्द्रह सौ और दो हजार तक लगा चुके थे ।

पाँचवें दिन शेखर आया। उसके साथ एक आदमी था। वह पंजाबी सलवार और लम्बा कुरता पहने था। उस लम्बे-चौड़े पंजाबी ने उमा के शरीर को दूर से देखा और जाने लगा तो शेखर उसके पीछे चला; क्योंकि बातचीत बाहर ही होती थी। लेकिन शेखर जा नहीं पाया। उमा उसके दामन से लिपट गई। वह विवश हो गया और अन्दर से ही चिल्लाया। “आप चलिये। मैं अभी थोड़ी देर में आता हूँ।”

शेखर को क्रोध तो बहुत आया। वह खूब जली कटी सुनाना चाहता था उमा को; लेकिन समाई कर गया और हँसकर बोला—“उमा ! तुम्हारा बचपना अभी नहीं गया। ऐसी बेधीरज हो जाती हो कि आदमी से बता भी नहीं करने देतीं। उस दिन मैं फिर वापस नहीं लौटा, इसलिये शायद तुम नाराज होगी। क्या बताऊँ। ऐसी व्यस्त जिन्दगी है कि एक मिनट की भी फुरसत नहीं मिलती। तुम तो अपनी हो, तुम्हें समझा सकता हूँ; मगर पैसा कमाने के लिये दूसरों को खुश रखना पड़ता है। यह मजबूरी है।”

उमा के मुँह की बातें शेखर ने छीन लीं और उनका संतोषजनक जवाब भी दे दिया। इससे वह फिर अपना सन्देह भूल गई। वह भ्रम में पड़ गई और शेखर की ओर उन्मुख हो धीरे-धीरे याचना भरे स्वर में कहने लगी—“खैर कोई बात नहीं। मुझे सन्तोष है; लेकिन एक भीख माँगती हूँ तुमसे। अकेलेपन से मैं ऊब गई हूँ। मुझे अपने घर ले चलो।”

“तुम नहीं जानती उमा कि मैं भी यही चाहता हूँ कि तुमको घर ले चलूँ। लेकिन माँ-बाप मुझ पर बहुत नाराज हैं। यह तो तुम्हें बता ही चुका हूँ। इसके अलावा इस समय वे लोग काश्मीर गये हैं। उनके आने पर ही चलना हो सकता है। कुछ दिन और ठहरो।” ये बातें शेखर ने हँसकर कहीं और उमा को संतोष हो गया। वह उसके प्रति विश्वास से भर आई और चुपचाप उसके पास बैठ गई।

प्रसन्न करने के लिये शेखर ने उमा की ठुड़ी हिलाई और उसकी आँखों में झंझकता हुआ पृष्ठने लगा—“आजकल तुम्हारा रँग पीला पड़ रहा है उमा, दुबली हो रही हो। क्या बात है ? खाने-पीने में मैं कमी नहीं रखता

हूँ, सभी चीजें जुटाये रहता हूँ। अधिक सोचा न करो। चिन्ता करने से खून जलता है।”

शेखर की बातें सुन उमा कुछ शरमा गई? वह नीची दृष्टि करके बोली—“कैसे कहूँ, मुझे लाज लगती है। तुम...।”

“यह क्या? तुम चुप क्यों हो गई, उमा? कहो न, क्या बात है?”
“तुम बाप बनने वाले हो।” इतना मुँह से निकलते ही उमा झेंप गई। उसने आँचल से आँखें मूँद लीं।

और शेखर, वह जोर से हँस पड़ा, फिर हँसते-हँसते बोला—“अच्छा तो यह बात है। हमारी उमा रानी माँ बनने वाली है। अच्छा देखो कल से फलों का प्रबंध कर दूँगा और दूध भी बाँध दूँगा सुबह शाम जिससे तुम्हारी तन्दुरुस्ती अच्छी रहे।”

उमा ने शेखर को अधिक प्रसन्न देखा तो मन की बात कहने लगी। वह बोली—“यह बात मेरी समझ में नहीं आती है कि बाल-बच्चा होने वाला है और हम लोगों का अब तक ब्याह नहीं हुआ। एक दिन चलकर आर्य समाज में यह पुनीत काम कर डालना चाहिये।”

इस पर शेखर जोर से हँसा और कहने लगा—“ब्याह तो पहले ही हो चुका था उमा, अब बच्चा होने वाला है। तुम डरती क्यों हो? ब्याह की रस्म भ्रदा करना एक कोरा स्वाँग है। मेल तो मन का चाहिये। लोग तुम्हें मेरी पत्नी ही कहेंगे।”

शेखर का जवाब ऐसा था कि उमा कुछ उत्तर नहीं दे पाई। वह देर तक वहाँ बैठा रहा। अपने सामने खाना बनवाया। दोनों ने साथ-साथ खाया और उस दिन उसने उमा को शिकायत का तनिक भी मौका नहीं दिया। वह घर से निकला और मंडी से दो टोकरे फल खरीदकर ले आया। रात को भी उसने खाना वही खाया। सबेरे नहा-धो जब चलने लगा तो हँसकर उमा ने उसे विदा किया और बोली—“देखो, जल्दी ही आजाना। मैं खाना तैयार रखूँगी।”

“हज़र का हुक्म सिर आँखों पर । बन्दा ज़रूर आयेगा ।” यह कह हँसता हुआ शेखर वहाँ से चला गया और उमा चौखट पर खड़ी देखती रही जब तक कि वह आँखों से ओझल नहीं हो गया । आज वह बहुत खुश थी; क्योंकि जाते समय शेखर ने बाहर से ताला नहीं बन्द किया । वह पिंजड़े में बन्द पक्षी को आजाद कर गया था ।

२३

उमा के आँगन में अषाढ़ बरस रहा था । उसका मन-मयूर नाच रहा था थिरक-थिरक । वह भविष्य की स्वर्णिम कल्पनाओं का संसार बसाती और उसमें खोकर रह जाती । उसका अन्तःकरण कह रहा था कि ईश्वर जो कुछ करता है, अच्छा करता है । मैं जगदीश को बुरा समझती थी; लेकिन उसने मेरा उद्धार किया है । मैं विधवा नहीं, उसकी पत्नी हूँ, उसके होने वाले बच्चे की माँ । जब उसके माँ-बाप काश्मीर से लौट आयेंगे तब मैं उस बड़े घर की बहू बनूंगी, जिसमें लक्ष्मी खेलती है । काश ! दिन ऐसे ही सुखद बने रहें तो जिन्दगी मुस्कराती रहेगी और गम की परछाइयाँ तक पास नहीं आयेंगी ।

नारी पुरुष का जितनी जल्दी विश्वास कर लेती है पुरुष उतनी जल्दी नहीं पसीजता । वह कठोर होता है । जो उमा शेखर को नर पिशाच समझ बैठी थी वही अब परोक्ष में उसकी आरती उतार रही थी । और शेखर सोच रहा था कि अब मुझे उमा की बिक्री वाला विचार बदल देना चाहिये । उसके स्वास्थ्य का पूरा-पूरा ध्यान रखना ज़रूरी है । ईश्वर जब देता है तो छप्पर

फाड़कर। उसकी माया निराली है। अगर उमा पुत्र को जन्म देती है तो मेरी पौ बारह है। बहुत अच्छा सौदा पड़ेगा किसी निरवशी सेठ से। आठ-दस हजार देगा। और मान लो लड़का न होकर लड़की होती है तो भी क्या कहना है। वह कोई कोठा आबाद करेगी। बाई जी से चार-पाँच हजार तो मिलेंगे ही। मुझे उमा को और ध्यान देना चाहिये। तरीफ तो तब है जब बच्चा हाने के बाद भी उमा की तन्दुरुस्ती ज्यो की त्यो बनी रहे।

इस तरह दो धाराये बह रही थी। एक मे थी बेसुध उमा जो सपनों का संसार बसा रही थी। वह अनजान थी। उसे भ्रम रूपी विश्वास के घूंट पिलाये गये थे और दूसरी धार मे बह रहा था शेखर। वह अपना स्वार्थ सिद्ध करने की योजना बना रहा था। ठग विद्या से वह पैसे लाता; उमा को अच्छे से अच्छा खिलाता। अब कपड़ो की उसके पास कमी नहीं थी। दो ट्रंक धोतियों तथा साड़ियों से भर रहे थे। शेखर नित्य आता। दिन में खाना एक बार वहाँ जरूर खाता। उमा फूली न समाती। वह उस पर बलि-बलि जाती और कहती तुमने हाथ पकड़कर साथ नहीं छोड़ा, यह तुम्हारा पुरुषार्थ है। मैं तुम्हें गलत समझ बैठी थी। अब सोचती हूँ कि मेरी बुद्धि कितनी कुंद है।

तब शेखर हँस देता और कहने लगता कि उमा हाथ पकड़ कर साथ छोड़ने वाले दूसरे ही लोग होते है। आदमी जिन्दगी में प्यार करता है तो केवल एक से ही। चमन मे सुन्दर गुलाब का फूल खिला था। उसने बरबस ही मुझे मोह लिया और अब सदा सर्वदा के लिये मेरा हो गया।

“तुम मेरे.....” कहकर उमा अपनी गोरी बाहें प्रियतम के गले में डाल देती और निहाल हो जाती।

इतना ही नहीं शेखर ने उमा को उठाकर सिर पर बैठा लिया था। वह नित्य प्रातः और सायं उसे अपने साथ टहलने के लिये लिवा जाता। कभी-कभी दोनो चलचित्र देखने भी जाते। जब कभी उमा की इच्छा होती तो शेखर उसे गोमती स्नान के लिये भी ले जाता। इस समय उसके चेहरे पर चमक थी और गालों पर लाली। वह खूब फल खाती और दूध पीती।

प्रसव का समय निकट आता जा रहा था। जब सावन भी व्यतीत होने पर आ गया तो उमा ने कहा कि अब शेखर के माँ-बाप काश्मीर से आ गये होंगे। वह उसे अपने घर ले जाये। शेखर दो तीन दिन तक टालता रहा। फिर उसने जवाब दिया कि वे लोग आ तो जरूर गये हैं, लेकिन बात बनी नहीं, बिगड़ गई। वे इस बात के लिये राजी नहीं होते कि मैं तुम्हें पत्नी स्वरूप स्वीकार करूँ। कुछ दिन और ठहर जाओ, बाल-बच्चा होने दो। फिर देखना माँ और पिता जी दोनों ही दौड़े आयेगे। उनको नाती और बहू मिलेगी और मुझे मेरे खोये अधिकार।

उमा गदगद हो गई और पति के वक्ष में सिर गड़ा आत्म-विभोर हो गई। उसे लगने लगा कि बसंत फूल रहा है। कोयल आने वाली है और उसके सौभाग्य का सूरज उदय हो चुका है। वह पत्नी है, और माँ बनने वाली है और एक दिन कहलायेगी बड़े घर की बहू। कौन कहता है कि उसका नसीब खोटा है। उसका भाग्य तो लाखों में एक है।

२४

भादों की घनघोर घटायें बरस रही थीं घुमड़-घुमड़ कर। एक सप्ताह से पानी के बरसने का सिलसिला बन्द नहीं हुआ। घरों में बैठे-बैठे लोग ऊब गये। गोमती में बाढ़ आ गई। शहर के निचले हिस्सों में पानी भरने लगा। शेखर कहीं नहीं निकल पाता। बाजार खुले जरूर थे; लेकिन दूकानदार रो रहे थे। होटलों और सिनेमा घरों में भी भीड़ नहीं रहती। और घुड़दौड़ तो बन्द थी ही। वह आखिर जाता तो कहाँ? उसके पास लगभग सौ रुपये थे।

धीरे-धीरे सब खर्च हो गये। तब वह परेशान हो गया और पैसा पैदा करने की युक्ति सोचने लगा।

कोई मार्ग सम्मुख न देख शेखर ने कानपुर जाने की योजना बना ली। वह जानता था कि ऐसे अवसरों पर सागर उसकी मदद जरूर करता है। बहुत दिन से गया नहीं था। चाचा, चाची और कान्ता की उसे याद आई। वह उमा से यह कहकर चल दिया कि मैं एक जरूरी काम से कानपुर जा रहा हूँ। वहाँ एक जगह से रुपया मिलना है, कल या परसों तक लौट आऊँगा।

जब शेखर कानपुर पहुँचा तो दिन हँस रहा था। बाहर बरामदे में सागर टहल रहा था। कान्ता लॉन में लगे फूल तोड़ रही थी और अन्दर बाबू श्यामलाल वसुमती से शेखर के विषय में बाने कर रहे थे कि बड़ा ठीठ है, कभी घर नहीं आता। अब की बार आये तो उसे बाँधकर रखूँ।

कान्ता और सागर के साथ जब शेखर आँगन में पहुँचा तो उसने सुना उसकी चाची कह रही थी कि तुम कहते हो सागर का ब्याह कर डालो, लेकिन मैं कहती हूँ यह कैसे हो सकता है। मैं पहले शेखर को दूल्हा बनाऊँगी।

तभी हँस कर शेखर ने उसके पैर छुये। वसुमती ने उसके सिर पर हाथ रख दिया और प्रसन्न होकर बोली—“बड़ी लम्बी उम्र तुम्हारी है, बेटा। नाम लेते ही आ गये, बड़े भाग्यशाली हो।”

शेखर खिलखिलाकर हँस पड़ा। और जब वह बाबू श्यामलाल के चरण स्पर्श करने लगा तो उन्होंने उसे वक्ष से लगा लिया और मुँह चूमते हुए बोले—“अच्छी तरह तो रहा। अरे! तू कहाँ रहता है पागल, कभी चिट्ठी भी नहीं लिखता।”

शेखर की वाणी मूक हो गई। उसकी आँखें श्रद्धा से भर आईं। यह देख बाबू श्यामलाल गद्गद हो गये और पुलकित कंठ से सागर की ओर देखकर बोले—“सागर, अपने दादा को पानी पिलाओ। नाश्ता करके फिर दोनों मेरे पास आना।”

सागर शेखर को लेकर अपने कमरे में चला गया। बसुमती और कान्ता भी साथ गईं। वहाँ अलगू शेखर के बूट खोलने लगा। कान्ता भागकर खस्ते की कचौड़ियाँ, लड्डू और पापड़ी, दालमोट आदि दो प्लेटों में रखकर ले आई। शेखर खाने लगा। उसी बीच बातों का सिलसिला शुरू हो गया। बसुमती ने कहा—“शेखर ! आखिर तुम्हारा बचपना कब जायेगा। अब घर में रहो, बहुत धूम चुके। अगली सहालगों में तुम्हारा ब्याह करूँगी। तुम्हारे चाचा अकेले हैं। सागर अभी इतना बड़ा बोझ नहीं उठा सकता। उसका हाथ बटाओ। अपना धन्धा देखो।”

सागर चुप था। लेकिन उसका मौन माँ की बातों का समर्थन कर रहा था। और अलगू ले आया था थरमस में चाय। एक कप में ढाल उसने शेखर की ओर बढ़ा दी। उसका एक गरम-गरम घूँट गले से नीचे उतार शेखर बोल उठा—“चाची, तुम्हें कैसे यकीन दिलाऊँ कि मैं कमीशन एजेंट हूँ। मुझ से बँधकर एक जगह नहीं बैठा जाता। मेरे काम में भी आमदनी अच्छी होती है। और फिर जब जी ऊबेगा तो फिर अपना घर तो है ही। अभी मुझे कुछ दिन और आजाद रहने दो, चाची। फिर जैसा कहोगी करूँगा।”

बसुमती हँस पड़ी और हँसते-हँसते बोली—“तेरा धन्धा तो मैं खूब जानती हूँ। मैं तेरी एक नहीं सुनूँगी। माह या फागुन में तेरा ब्याह करती हूँ। जब बहू आ जायेगी तो देखूँगी कि कहाँ जाता है तू।”

देर तक सब वार्ता चलती रही। बाबू श्यामलाल प्रतीक्षा कर रहे थे कि शेखर अब आता है तब आता है। विलम्ब होते देख उन्होंने अलगू को आवाज दी। वह जाकर शेखर को बुला लाया।

×

×

×

शेखर जितनी देर अपने चाचा के पास बैठा। वे उसे उपदेश ही देते रहे कि अब वह नादानी छोड़े और समझ से काम ले, ज्यादा घुमक्कड़पन अच्छा नहीं। अपने घर का काम देखे, जिससे कहीं शादी-ब्याह का सिलसिला लगे। यहाँ लोग पूछते हैं कि शेखर कहाँ रहता है, ब्या करता है तो शर्म-सी

मालूम होती है। अब कही घूमने फिरने की जरूरत नहीं। मैं तुम्हें कही नहीं जाने दूँगा। तुम तो ऐसे खो जाते हो कि पता ही नहीं चलता। तुम्हारी चाची, तुम्हारा भाई सागर और तुम्हारी बहन कान्ता ये सब हैं जो कि तुम्हारा नाम रटते रहते हैं। क्या तुझे कभी हम लोगों का मोह नहीं सताता, कभी ख्याल नहीं आता, बेटा ? तुम कैसे पागल हो जो अपने आग को न सम्भाल इधर-उधर भटकते हो :

चाची वसुमती के नीति वचन और बाबू श्यामलाल के उपदेश ये सब शेखर के एक कान में पड़े और दूसरे से निकल गये। कमल के पत्ते पर पानी की बूंद ऊपर आयी और फिर ढुलक गई। पन्ना ज्यों का त्यों हो गया। भोजनोपरान्त दोनों भाई जब आराम करने के लिये लेटे तो बातों के सिलसिले में सागर के मुँह से निकल पड़ा—“दादा क्या इरादा है ? अब तो कही नहीं जाना है ? मैं……।”

“अरे सागर ! तुम तो समझ में काम लो। चाचा चाची पुरानी विधायक धारा के हैं उनमें तर्क करना उनको नाराज कर देना है। मैं बँधकर नहीं बैठ सकता, भइया। बेकार रहना नहीं काम करता हूँ, तुम्हें बतला चुका हूँ। अभी हमलिये आया था कि बरसात का मौसम है, धग्धा चलता नहीं। आमदनी कम है और खर्च अधिक। हाथ बिल्कुल खाली हो गया तो तुम्हारी याद आई। मुझे कुछ रुपये दो, मागर जिससे महीने पन्द्रह दिन का काम चले। मिलते ही तुम्हें बैंक-ड्राफ्ट भेज दूँगा।” यह कहकर शेखर सागर का मुँह देखने लगा।

और सागर कहने लगा—“कैसी बातें करने हो, दादा ! मैं क्या करूँगा बैंक-ड्राफ्ट का। मेरी प्रत्येक वस्तु आपकी है। कितने में काम चल जायेगा ? दो सौ-ढाई सौ या तीन सौ ? मैं अभी देता हूँ।”

“ढाई तीन सौ नहीं, सागर। कम से कम पाँच सौ हो तब काम चलेगा। जानते हो कि मेरी जरूरतें बहुत बड़ी हैं।” यह कहकर शेखर हँस दिया।

सागर ने निजोगी खोली और सौ-सौ के पाँच नोट शेखर के हाथ में देता हुआ बोला—“दादा ! तुम्हें मेरी कसम है कि जल्दी नहीं जाओगे और

जाकर फिर जल्दी ही आने की सोचोगे । मुझे आपके बिना बिल्कुल अच्छा नहीं लगता है ।”

इस पर शेखर बोल उठा—“वाह भइया वाह ! तुम भी बच्चों जैसी बातें करते हो । भला मैं तुमसे कब दूर हूँ । सच कहता हूँ कि अगले हफ्ते ही लौट आऊँगा । एक जरूरी काम है । कल मुझे लखनऊ पहुँचना है ।”

सागर अपनी कहता रहा । शेखर उसे संतोष देता रहा । साँझ हुई दोनों भाई घूमने गये । उनके साथ कान्ता भी थी । शेखर ने उन्हीं रूपों में से उसके लिये एक बढ़िया सी साड़ी खरीदी । फिर उसको देता हुआ बोला—“लो कान्ता ! मैं तुम्हारे लिये कभी कुछ नहीं लाता । यह साड़ी एक निशानी हो गई । जब देखोगी और पहनोगी तब तुम्हें मेरी याद आ जायेगी । फिर तुम चाची चाचा से मेरी शिकायत करने लगोगी कि शेखर दादा आते नहीं, बड़े झूठे हैं ।”

कान्ता और सागर दोनों हँस पड़े । सब लोग जब घर लौटे तो बहुत प्रसन्न थे ।

सबेरे शेखर चला गया तो सागर उसके प्रति सोचने लगा कि शेखर दादा एक अजीब पहेली है, समझ में नहीं आते । क्या करूँ ? उनको अपनी ओर कैसे मोड़ूँ । वे अपने हैं और भटकते हैं इसीलिये दूँ मालूम होता है । आदमी तो गैरो के काम आता है और मैं उनके लिये कुछ भी नहीं कर सका । काश ! वे मेरे मन्तव्य को समझ पाते तो फिर कोई अभाव नहीं रह जाता । मैं उन्हें जैसा चाहता हूँ वैसा बना नहीं पाता । यह मेरी कमजोरी है । प्रयत्न करूँगा और मुझे विश्वास है कि भविष्य मेरा साथी होगा । शेखर दादा एक दिन इन्सान बनेंगे, सच्चे और सोने जैसे ।

२५

बरसात बीती और सर्दी भी जवान हो गई ; लेकिन शेखर न कानपुर गया और न सागर को कोई चिट्ठी ही लिखी । वह लखनऊ में ही रहा । उमा को खुश रखने में कुछ भी उठा नहीं रखा । उसका प्रसव मामूली ढंग से नहीं, अस्पताल में हुआ । उसने एक पुत्र और एक पुत्री को जन्म दिया । शेखर की खुशी का और-छोर न रहा, उसका मन कुलाचे मारने लगा ।

दस दिन बाद जच्चा और बच्चे अस्पताल से आ गये । दोनों जुड़वाँ बच्चे एक ही जैसी सूरत के थे । दोनों का चहरा माँ से मिलता था । उमा के खाने पीने की पहले जैसी व्यवस्था थी । उसमें कोई भी त्रुटि नहीं पड़ी और उसका विश्वास शेखर के प्रति अटूट हो गया ।

दम्पति पास-पास बैठते और बच्चों का पालना सामने होता । वे बच्चों को झुलाते और आपस में हँस-हँसकर बातें करते । इस तरह धीरे-धीरे बच्चे बढ़ रहे थे । उमा के मानस सागर में शात्म सतोष की लहरियाँ उठ रही थी । वह मैके को भूल गई, भूल गई समुराल की यातना को और अपने में खो गई कि वह माँ है और जगदीश जैसा पति बिरले को ही मिलता है ।

उमा का अन्तर्द्वन्द्व चलता कि अब मेरी नाव मँझदार में नहीं, मैं किनारे आ चुकी हूँ । जगदीश और बच्चे सौभाग्य स्वरूप मेरे साथ हैं । मुझे कुछ और नहीं चाहिये । पति और संतान से बढ़कर स्त्री का दूसरा सुख नहीं होता ।

और शेखर, उसके भीतर का शैतान उसे मजबूर कर रहा था कि अब वह दुनियादारी छोड़े और अपना काम शुरू करे । बच्चे तीन महीने के हो गये हैं । उमा की तन्दुरुस्ती अच्छी है । इस प्रसव के बाद वह कुछ दुबल हो गई थी ।

खरी मजदूरी और चोखा काम ; हर्र लगे न फिटकरी, रँग चोखा आये । शेखर ऐसी ही बातें सोचता कि चट्ट गुरिया और पट्ट माला । उसे

एक बहुत बड़ी रकम मिलेगी। ये तीनों माँ-बेटे उसके लिये एक सौदा हैं। तीनों ही बिकेंगे दुनिया की हाट में और उसकी मुट्ठियाँ भरेगी। उसका बैंक बैलेन्स बढ़ेगा। तब वह सागर के पास जायेगा और उसको दिखायेगा कि देखो मैंने अपने धन्धे में कितना रुपया कमाया है। सागर की आँखें खुल जायेगी। वह चकाचौंध में पड़ जायेगा कि हाँ हमारे शेखर दादा ठीक कहते थे कि वे कमीशन एजेंट है और उनका धन्धा बहुत अच्छा चलता है।

घर में सुख शान्ति और सन्तोष की त्रिवेणी लहरा रही थी। उमा उसमें नहा रही थी। उसका अंग-अंग पवित्र हो गया था। अब वह विधवा नहीं सुहागिन थी और उसका सुहाग था जगदीश रूपी शेखर। उसकी कल्पना के तार कोमल और मुलायम, रेशम जैसे थे; मगर शेखर की कल्पना का एक भी तार ऐसा नहीं था जो लोहे का न हो। कहाँ रेशम और कहाँ लोहा। दोनों की टक्कर का परिणाम क्या होगा? यह लोहा जानता था और रेशम था अनजान; क्योंकि उसे झूठे विश्वास के मीठे-मीठे घूंट पिला दिये गये थे।

२६

शेखर उमा की दृष्टि में उससे अधिक वच्चों को प्यार करता था। वह जितनी देर घर में रहता, उन्हीं से खेलता रहता। उमा को यह बहुत अच्छा लगता था। वह अपने सौभाग्य पर बलि-बलि जाती।

होली का त्यौहार शेखर ने उमा के साथ एक गृहस्थ की तरह मनाया। दोनों ने एक दूसरे पर रँग डाला, गुलाल और अबीर से होली खेली। दोनों

बच्चों के भी अवीर के टीके लगाये गये। उस दिन शेखर उमा के साथ बाजार घूमने गया। वहाँ उसने तमाम मिठाइयाँ खरीदी और बहुत से खिलौने तथा गुठ्वारे आदि। खुशी-खुशी दम्पति घर लौटे। खाना खाकर दोनों नींद की गोद में चले गये।

सवेरे उमा के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसने देखा कि खटोले पर केवल लड़की सो रही है और लड़का नहीं है। पहले उसे भ्रम हुआ कि शायद जगदीश ने उसे अपने पास लेटा लिया हो; लेकिन जब उसने जगदीश की चादर झिंटकी तो वहाँ बच्चा न था। वह एकदम चीख पड़ी। वह कह रही थी हाँफने स्वर में - “मेरे बच्चे को मालूम पड़ता है कि कोई उठा ले गया। घर में कहीं नहीं है। पता नहीं कहाँ चला गया। मैं सोती रही तुम भी सोते रहे और मेरा लाल चला गया।”

शेखर हड़बड़ा कर उठा और उमा को समझाता हुआ बोला - “धीरज रखो, उमा। जायेगा कहाँ? मैं देखता हूँ।” यह कहकर वह घर भर में भागा-भागा फिरने लगा। बाहर के किवाड़ों की कुन्डी अन्दर से बन्द थी। आखिर चोर किस रास्ते से आया और किधर से चला गया।

दोनों हैरान थे और लड़का पता नहीं कहाँ खो गया था। उमा सिर पीटने लगी। वह जार-बेजार हो रोने लगी। शेखर उसको समझाता रहा। फिर जब वह तनिक शान्त हुई तो उससे यह कहकर बाहर चला गया कि मैं थाने जाकर अभी रिपोर्ट लिखवाता हूँ। भारत सेवक-समाज और शहर कांग्रेस कमेटी के दफ्तर में भी लिखवाये आते हैं कि रात को अचानक कोई मेरा लड़का चुरा ले गया।

दिन भर शेखर घर नहीं आया। काफी रात गये जब वह लौटा तो उमा से बोला कि बहुत थक गया हूँ। लगातार चलता रहा, तलाश करता रहा; लेकिन नहीं मिला मेरा लाल। लगता है वह किसी दुश्मन के हाथ पड़ गया।

उमा दिन भर रोई थी। रोते-रोते आँखें लाल हो गई थीं। वह

पति की बातें सुनते ही फूट-फूटकर रोने लगी। वह कुछ नहीं बोली। उसके आँसू बहते रहे और वह रोती रही।

×

×

×

चार दिन हो गये। उमा ने अन्न का दाना मुँह में नहीं डाला। शेखर उसे न जाने कितना समझता; लेकिन वह अपने पुत्र के लिये दुखी थी और उस दुख में डूबकर रह गई थी। शेखर को चिन्ता हुई कि इस तरह उमा की अच्छी भली तन्दुरुस्ती खराब हो जायेगी और मेरी आगे की योजनाओं पर पानी फिर जायेगा। पाँचवे दिन आखिर उसने उमा को समझा लिया। उसने खाना खाया। अन्न की गर्मी जब वदन में पहुँची तो उसे थोड़ी देर बाद ही नींद आ गई। तब दोपहर हो रहा था। वह बेसुध सो रही थी। लगभग एक पहर बाद उसकी आँखें खुली। उसने जमुहाई ली और करवट बदली। सामने चारपाई पर पड़े शेखर पर उसकी निगाह गई। वह चादर ताने सो रहा था।

लड़की पालने में सोई थी। उमा सबसे पहले उठकर उसके पास गई, लेकिन यह क्या पालना खाली था। वह चकरा गई। उसके पैरों के नीचे से जमीन निकल गई। उसकी घिग्घी बँध गई, मुँह से बोल नहीं निकला और वह वही पर धम्म से गिर पड़ी। गिरते ही उसके मुँह से एक चीख निकली और वह बेहोश हो गई।

देर बाद जब उमा अपनी चेतनावस्था में आई तो उसने पाया कि उसका सिर शेखर के घुटने पर है। वह उसके मुँह पर पंखा झल रहा है। उसने धीरे से पूछा—“मेरी बच्ची कहाँ है? क्या उसे भी कोई ले गया। यह सब क्या हो रहा है? मैं पागल हो जाऊँगी।”

शेखर ने उसके सिर पर हाथ रखा और सान्त्वनापूर्ण शब्दों में उसे समझाने लगा—“हाँ उमा, लड़की को भी कोई जब हम लोग सो गये उठा ले गया। मैं बाहर जाकर खोज करता हूँ। सन्तोष करो, उमा। हम लोगों का नसीब ही खोटा है। भगवान् ने दो खिलौने खेलने को दिये थे। उन्हें कोई चुरा ले गया। वह भी चैन से नहीं बैठेगा। भगवान इसका बदला उसे जरूर देगे।”

उमा उठकर बैठी । अब उसकी आँखों में आँसू नहीं थे । उसकी दृष्टि भयावह हो उठी थी । ऐसा लगता था कि वह सचमुच पागल हो गई है । शेखर उसे आश्वासन दे रहा था कि मैं पूरी-पूरी कोशिश करूँगा । अगर भाग्य ने साथ दिया तो बच्चे जरूर मिल जायेंगे ।

साँझ हुई । घर में अँधेरा उतर आया था । शेखर ने बत्ती जलाई तो उमा एकदम खीझ उठी और बोली—“बन्द कर दो बत्ती, मुझे अँधेरे में ही अच्छा लगता है ।” यह कहकर उसने प्रतीक्षा नहीं की और जल्दी से उठकर बत्ती बुझा दी ।

शेखर परेशान हो उठा । वह पूछने लगा—“उमा, हिम्मत रखो । मैं कहता हूँ कि तुम्हें हो क्या गया है ? आखिर आदमी बड़े-बड़े दुख कैसे झेलता है । इसी तरह सब लोग घबड़ा जायें तब तो फिर पूरा पड़ चुका ।”

लेकिन उमा ने कुछ भी जवाब नहीं दिया । वह ओंधे मुँह चारपाई पर जाकर गिर पड़ी और तकिये में सिर गड़ा फूट-फूटकर रोने लगी ।

२७

उमा रोती कलपती रही । दिन पर दिन बीतने लगे । शेखर को यह चिन्ता थी कि अब उमा को अधिक दिन इस घर में रखना ठीक नहीं । वह रो रोकर आधी रह जायेगी । फिर कोई उसके एक हजार भी नहीं देगा । मैंने जितना उस पर खर्च किया है, वह व्याज सहित बसूल करना चाहता हूँ । यही मौका है । अब उसे जल्दी से जल्दी अपने से मुक्त कर देना है ।

यह सोच शेखर लड़की के गायब होने के तीन दिन बाद घर से बाहर निकला और फिर लौटकर नहीं गया। दस दिन बीत गये। उमा रो-रो कर घर भर रही थी। वह न कुछ खाती और न पीती, दिन-रात मुँह औंधाये पड़ी रहती। उसकी दशा बड़ी दीन हो रही थी। उसके कलेजे में हूक उठ रही थी कि मेरे दोनों बच्चे गुम हो गये और अब शायद वे नहीं मिलेंगे। इससे अच्छा होता मैं मर जाती, इन्हें कुछ न होता। एक सूरज था दूसरा चाँद। दोनों अस्त हो गये। अब मेरे सामने अमावस की काली रात है जिसमें हाथ को हाथ नहीं मूझता। मैं अन्धी हो जाऊँगी। और इन आँखों से अब दुनिया को नहीं देख सकूँगी। वह बड़ी कठोर है पत्थर की तरह। उमने मेरे दोनों छीने छीन लिये। मैं कहीं की नहीं रही।

उमा को एक ओर जहाँ बच्चों के गायब हो जाने का वेहद दुख था वहाँ दूसरी ओर उसे यह चिन्ता भी लग रही थी कि जगदीश नहीं आया, इतने दिन हो गये। क्या बच्चों के खो जाने से वह इतना दुखी हो गया कि मेरा भी साथ छोड़ गया।

नित्य सवेरे से साँझ तक उमा अपने जगदीश की राह देखती लेकिन जब वह नहीं आता तो निराश होकर मन ही मन सिसकने लगती। उसकी मौन सिसकियाँ इस बात की प्रतीक थी कि उसके कलेजे में आग लग गई है। वह धीरे-धीरे सुलग रहा है।

ग्यारहवें रोज दिन ढले शेखर आया। ऐसा लगता था कि जैसे वह बहुत जल्दी में है और किसी जरूरी काम से आया है। उमा उसे देखते ही जान सी पा गई। वह शीघ्रता से निकट आकर बोली—“कहाँ चले गये थे तुम ! इतने दिन कहाँ रहे ! मुझे अकेले में यह घर काटने दीड़ता है। अब मत जाना, नहीं तो सच कहती हूँ कि मैं पागल हो जाऊँगी। बच्चों का गम मुझे खाये जा रही है।”

एक साथ ही व्यस्त स्वर में उमा सब कहती चली गई। शेखर मुनता रहा। वह तथ्य पर पहुँच गया कि उमा एक मात्र उसी का सहारा लेकर जी रही है। वह हँसकर उसके दोनों कन्धे पकड़ प्यारपूर्वक हिलाता हुआ बोला—

“कहीं नहीं जाऊँगा, उमा । बच्चों के खो जाने से तुम दुखिया हो रही हो । आज तुम्हारा फैसला हो गया । पिताजी राजी हो गये । कार आई है बाहर खड़ी है । मैं तुम्हें लेने आया हूँ । बड़े मुनीम और दो गुमाश्ते भी साथ हैं । जल्दी से तैयार हो जाओ । अब हम लोग साथ-साथ रहेगे । वहाँ चलकर तुम बच्चों का दुख भूल जाओगी ।”

उमा ने यह सब सुना तो वह पति का मुँह देखने लगी । वह कुछ बोल नहीं पाई और अपने मन से ही पूछने लगी कि क्या यह सच है और सम्भव है कि मैं अपनी ससुराल में जाकर भूल जाऊँगी कि मेरे बच्चे थे और मैं कभी माँ बनी थी । वह जड़ बनी बैठी रही ।

और चेतन जाग रहा था । शेखर का वाक चातुर्य उसे अपनी ओर खींच रहा था । वह कह रहा था—“उठो, चलो उमा ! सोचती क्या हो ? कपड़े पहनो, रात के ठीक साढ़े सात बजे का मुहूर्त बना है । उस समय तुम्हें अपने ससुर-गृह में प्रवेश करना है और पिताजी मुहूर्त वाले मामले में बड़े कट्टर है ।”

“अच्छा, तैयार होती हूँ ।” यह कहकर उमा वहाँ से चल दी । शेखर बाहर चला गया और जाते-जाते कह गया, “मैं बाहर हूँ उमा । तुम जल्दी करो । और देखो बाहर निकलते समय पर्दा जरूर कर लेना । बड़े मुनीम को मैं पिता की तरह ही मानता हूँ ।”

उमा अन्दर कमरे में चली गई । जाते जाते शेखर फिर लौटा । वह उसके पास आया और उसके कान के पास मुँह ले जाकर कहने लगा—“जो साड़ी मैं तुम्हारे लिये होली पर लाया था वही पहन लो और सब कपड़े यही छोड़ दो । वहाँ माता जी के पास कपड़ों का भंडार भरा है ।”

शेखर चला गया और उमा मुस्करा दी । वह एक क्षण के लिये अपना दुख भूल गई और मन ही मन सोचने लगी कि सचमुच जगदीश मुझे बहुत प्यार करता है ।

उमा तैयार हो मुँह पर लम्बा सा घूँघट डाल दरवाजे पर आई । तभी जल्दी से शेखर उसके पास आ धीरे से कहने लगा—“सामने कार खड़ी

है। आगे की सीट पर बैठ जाओ। मैं मुनीम और गुमाशतों के साथ पीछे बैठता हूँ।”

उमा जब कार में बैठने लगी तो शेखर ने खिड़की खोल दी। उसके बैठते ही मोटर चल दी। वह समझ रही थी और सकुची सी बैठी थी कि पीछे बड़े मुनीम और उसके पति आदि बैठे हैं। लेकिन उस मोटर में केवल दो ही व्यक्ति थे, एक था ड्राइवर और दूसरी उमा।

काफी दूर जाकर कार रुकी। ड्राइवर ने उमा से उतरने के लिये कहा। वह सड़क पर उतर कर खड़ी हो गई और घूँघट की ओट से देखने लगी। सामने एक छोटा-सा पुरानी ईंटों का मकान था। उसका दरवाजा और किवाड़े भी नक्काशीदार पुराने ढंग के थे। वह खड़ी सोच रही थी कि जगदीश उसे अपने साथ अन्दर लिवा जायेगा या फिर उसकी सास को खबर होगी और वह आकर उसे ले जायेगी।

लेकिन यह सब कुछ नहीं हुआ। कार का हार्न बजा एक-दो और फिर कई बार। उस मकान के अन्दर से एक ढलती उम्र का आदमी निकला। वह साधारण धोती कुरता पहने था। उसके बाल खिचड़ी थे और कुछ बेतुके से। वह उमा के निकट आ कहने लगा—“चलो बहू, अन्दर चलो।”

उमा को उस व्यक्ति का यह आचरण कुछ लज्जास्पद-सा लगा कि इस घर में कोई नौकरानी नहीं है क्या जो लिवाने आती। नौकर भेजा गया। जगदीश तो कहता था कि मेरे बाप बहुत बड़े आदमी हैं; लेकिन घर का नक्शा कुछ समझ में नहीं आ रहा है। फिर भी वह चल दी उस आगन्तुक के पीछे-पीछे। कार जा चुकी थी और उमा यह अनुमान लगा रही थी कि जगदीश मेरे पीछे आता होगा।

वह आदमी उमा को घर के आँगन में छोड़ यह कह कर चला गया “बैठो, मैं अभी आता हूँ।”

थोड़ी देर बाद वह लौट आया और उमा से बोला—“अरे ! तुम बैठी नहीं, खड़ी हो। बैठ जाओ और यह घूँघट हटा दो। यहाँ मेरे सिवा कोई और है क्या ?”

यह सुनते ही उमा चकरा गई और तत्क्षण ही क्रोध से भर आई। बिगड़कर बोली घूंघट के अन्दर से ही—“आप कौन हैं ! जबान सम्भालकर बात कीजिये। अभी मैं उनसे कहती हूँ। वे...”

“कौन वे ! क्या मेरे अलावा तुम्हारा यहाँ कोई और भी है !” वह व्यक्ति हँसकर जबरदस्ती उमा के मुँह पर पड़ा घूंघट हटाने का उपक्रम करने लगा।

उमा घबड़ाकर पीछे हट गई और रोष भरे स्वर से बोली—“यह क्या बदनमीजी है ? आप मेरे पिता दाखिल होते हैं। आप जानते नहीं कि मैं इस घर की बहू हूँ। कहाँ है वे (शेखर) और मेरी सास जी किधर हैं ? अभी मैं तुम्हारी करतूत सबको बताती हूँ।”

इस पर वह आदमी खूब जोर से ठठाकर हँसा और हँसता चला गया। उसके बाद जब तनिक हँसी रुकी तो भद्दे स्वर में गाने लगा—“घूंघट के पट खोलरे तोहे पिया मिलेंगे।”

अब उमा से सहा नहीं हुआ। उसने घूंघट हटा दिया और सिंहिनी सी गरजकर उस आदमी से बोली—“तुम कौन हो, बतलाते क्यों नहीं ? और सब लोग कहाँ है। इसके पीछे कोई दूसरा मकान है। जगदीश को नहीं जानते, मैं उनकी पत्नी हूँ। मैं...”

“ओह जगदीश ! अरे बन्नों किसके चक्कर में हो। उसका नाम शेखर है, वह चार सौ बीसिया है। उसने तुम्हें सबजबाग दिखलाये होंगे। लेकिन सत्य तो यह है कि मैं जाति का बनिया हूँ और यह घर मेरा है। उम्र पचास की हो गई, जोरू मर गई, मैं अकेला रह गया। लेन-देन का काम करता हूँ। व्याह की कोशिश की लेकिन रुपया लेकर भी अपनी लड़की देने को कोई तैयार नहीं हुआ। एक दिन अचानक शेखर से भेंट हो गई। उससे मैंने कहा। अवसर वह चोरी की चीजें मेरे पास बेचने के लिये लाया करता है। सो मेरी रानी, मन बहलाने के लिये मैंने तुम्हें पूरे तीन हजार की रकम देकर खरीदा है। अब तुम कही नहीं जा सकती !” यह कहकर वह बनिया उमा की ओर बढ़ा और चाहा कि उसको अपनी बांहों में भर ले।

उमा भागी । वह दरवाजे पर आई तो देखा कि गली की बत्ती जल रही है और अन्दर से ताला बन्द है । वह दोनों हाथ कमर पर बाँध दीवाल का सहारा ले हाँफने लगी । वह क्रोधावेश से अन्धी हो रही थी और बनिया उसकी ओर बढ़ा चला आ रहा था ।

२८

पहले उमा जब क्रोध कर रही थी और बनिया पर बिगड़ रही थी तो वह भी उसे चिढ़ाने से पीछे नहीं रहा । लेकिन जब वह मजबूर हो गई और सिसक-सिसक कर रोने लगी तो वह उसे समझाने लगा ।

रात का पहला पहर बीत चुका था । घर में सन्नाटा व्याप्त हो रहा था । उमा आँगन में बैठी थी । उसके आँसू बह रहे थे । उसने रो-रोकर अपनी सब कहानी सुनाई बनिया को । अब वह मौन थी और बनिया सहानुभूति भरे स्वर में उससे कह रहा था—“न रोओ उमा, तुम्हारी जिन्दगी दुखो ही दुखों से भरी है । तुमने बतलाया कि एक दिन तुम्हारा लड़का खो गया और उसके कुछ दिन बाद लड़की भी । मैं सच कहता हूँ कि इसमें भी शेखर का हाथ है । उसने बच्चे भी बेचे होंगे जरूर किसी के हाथ । आखिर फिर तुम्हारी बिक्री कैसे करता । क्या तुम जहाँ जाती, बच्चे साथ जाते ? बड़ा जालिम आदमी है वह । उसने तुम्हारी जिन्दगी चोपट कर दी ।”

उमा ठुड्डी पर हाथ रखे आसमान की ओर देख रही थी । बनिया का मुँह चल रहा था । वह सुन रही थी । बीच-बीच उसके मुँह से गरम-गरम साँसें निकल पड़ती और वह मन ही मन बेचैन हो जाती ।

बनिया की बातें सुन उमा को कुछ तसल्ली हुई और वह एक दुखिया की भाँति उससे पूछने लगी—“क्या मैं अब शेखर से नहीं मिल सकती ? तुम कोशिश करके मुझे एक बार उनसे मिला दो । तुम्हारा यह एहसान मैं जिन्दगी भर नहीं भूलूँगी ।”

बनिया यह सुनकर तनिक मुस्कराया और फिर गम्भीर होकर कहने लगा—“जिस तरह चोर-बदमाश के माथे पर नहीं लिखा रहता है कि यह आदमी ऐसा है, वैसे ही इन ठग लोगो के न कोई पते होते हैं और न कोई ठिकाने । मैं उसको जाकर कहाँ ढूँढ़ूँ । वह मेरे पास महीने में दो एक बार आता था; मगर अब नहीं आयेगा; क्योंकि यहाँ पर तुम हो । और उससे मिलना भी तुम्हारा व्यर्थ ही होगा । वह तुम्हें दूसरे भुलावे में डाल यहाँ से ले जायेगा, फिर और कहीं बेच देगा । तुम्हें तो धिक्का है ही तो मेरी रकम पर पानी क्यों फेंगे, फिजूल में तीन हजार बढ़े खाते में चले जायेंगे ।”

“तो तुम्हें अपने रुपये का इतना ख्याल है । किसी की जिन्दगी से खेलते तुम्हें शर्म नहीं आती । मेरी दुनिया वग़्वाद हो रही है और तुम हँस रहे हो । मैं जान दे दूँगी, लेकिन तुम्हें अपना बदन नहीं छूने दूँगी ।”

उमा ने बनिया से गुस्से में यह कहा और वहाँ से उठ बरामदे में पड़ी चारपाई पर जा लेटी । आँसू उसका साथ दे रहे थे और वह फफक-फफककर रो रही थी । बनिया उसके पास गया और बोला—“अब रोने-धोने से काम नहीं चलेगा उमा । आँखें खोलो, होश में आओ । मैं वचन देता हूँ कि तुम्हें यहाँ कोई तकलीफ नहीं होगी । घर की मालकिन बनकर रहोगी जो कहोगी करूँगा । मैं तुम्हारा तावेदार हूँ । उठो, कुछ खालो । धीरे-धीरे दुख भूल जाओगी और यह घर तुम्हें अच्छा लगने लगेगा ।”

उमा चुप रही । वह रोती रही । उसे ऐसा लग रहा था कि घरती फट जायेगी और वह उसमें समा जायेगी । वह हर एक की जोरू बनती नहीं फिरेगी । चाहे उसका नाम जगदीश हो या शेखर । उसने उसे भ्रष्ट किया, तबाही और वरवादी उसके सामने लाकर खड़ी कर दी है । वह उसी की होकर रहेगी । तनिक भी मौका मिला, यहाँ से निकल जायेगी और उसकी तलाश करेगी ।

बनिया आग्रह करके एक बार लौट गया, दुबारा फिर आया और कहने लगा—“अच्छा, तुम नहीं उठती हो तो कोई बात नहीं। मैं तुम्हारे लिये खाना यही लाता हूँ।”

बनिया खाना लिये देर तक खड़ा रहा। उमा ओधे मुँह पड़ी थी। उसने सिर तक ऊपर नहीं उठाया। तब हार मानकर बनिया चला गया। वह जाकर सो रहा। रात बीतने लगी और सन्नाटा धीरे-धीरे ऐसा छा गया कि घर साँय-साँय करने लगा।

धीरे-धीरे रात ढलने पर आ गई, उमा की सिसकियाँ बन्द नहीं हुई। उसे इतना आश्चर्य हो रहा था और इतना दुख कि जिसका कोई ओर छोर नहीं। उसे विश्वास ही नहीं हो रहा था कि जगदीश ने उसके साथ धोखा किया है। क्या यह सच है कि उसने उसके बच्चों को खुद ही गायब कर दिया और फिर मुझे भी इस बनिये के गले बाँध दिया। समझ में नहीं आता कि रहस्य क्या है? मैं कहाँ से कहाँ आकर फँस गई। यह घर तो ऐसी जेल है कि यहाँ से आसानी से नहीं निकल सकती। कल दिन में मैं देखूँगी और अच्छी तरह विचार करूँगी। शायद कोई राह नजर आ जाये।

सबेरा होने को आ गया। उमा सोई नहीं। उसकी सिसकियाँ सध गई थी। उसकी आँखों से आग निकल रही थी और कलेजे में उठ रही थी हूक। उसे लग रहा था कि उसका अंग-प्रत्यंग जल रहा है जैसे किसी दुश्मन ने उस पर तेजाब डाल दिया हो।

२६

सबरे उठते ही बनिया सबसे पहले उमा के पास गया। उसने देखा वह उठकर बैठी है। उसकी आँखें सूज रही हैं और रोते-रोते लाल हो गई हैं। उसके सिर के बाल अस्त-व्यस्त हैं और वह भोचक्की सी बैठी है। वह एक साथ ही कई सदमे नहीं सह पाई। इसीलिये उसका यही हाल है। वह कई एक क्षण तक खड़ा रहा। बोला कुछ नहीं।

उमा ने बनिये को देखा तो फूटकर रो पड़ी और रोते-रोते बोली—
“मुझे आजाद कर दो। मैं तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ, हाथ जोड़ती हूँ।”

बनिया उसकी गतिविधि देखता रहा। वह मौन रहा और उमा, वह जैसे पागल हो गई थी। उठकर खड़ी हो फिर दरवाजे की ओर देख वह बनिया से कहने लगी—“ताला खोला दो। यहाँ मेरा दम घुट रहा है। मैं बिना मौत मर जाऊँगी और तुम पाप के भागी होगे।”

बनिया फिर भी नहीं बोला। वह जाकर अलग बैठ गया। तब उमा उसके पीछे भागी और मिन्नत करने लगी। बनिया नहीं पसीजा। वह गुगसुम बैठा रहा। जब अधिक देर हो गई तो उसने केवल इतना कहा—
“अच्छा! अब जाओ, देखो वह सामने टट्टी है, पास ही गुसलखाना और नल। मैंने वहाँ गुसलखाने में तुम्हारे पहनने के लिये धोती रख दी है। उसके बाद कुछ खाओ पियो। फिर जब शान्ति से बैठोगी तो बात करूँगा।”

उमा ने यह सुना तो वह जल-भुन उठी और तेजी के साथ पैर पटकती हुई वहाँ से चल दी। फिर आकर उसने चारपाई की शरण ली। वह पड़ी-पड़ी अपने भाग्य पर रोती रही। उसे याद आते रहे अपने बच्चों के चाँद जैसे मुखड़े। उसकी ममता भीतर ही भीतर बिलखने लगी। उसका चित्त अशान्त था। वह विक्षिप्त की नाई न जाने क्या-क्या सोच रही थी।

दिन काफी चढ़ आया था। आखिर लेटे-लेटे उमा ऊबकर उठी। उसने चारों तरफ दृष्टि दीवाई। बनिया वहाँ नहीं था। वह दरवाजे पर गई। देखा कुन्डी बाहर से बन्द है, अन्दर का ताला खुला है। वह वापस लौट आई और नल पर जा भर पेट पानी पी पुनः चारपाई पर आ लेटी।

दोपहर को बनिया आया। उसके हाथ में दो बड़े-बड़े दोने थे। एक दोने पर एक मिट्टी का कुल्लड़ भी रखा था, जिस पर पत्ता ढाँप रहा था। उसने दोने रख दिये और फिर उनको खोलता हुआ उमा की ओर उन्मुख होकर बोला—“लो उमा। अब तो भूख लगी होगी तुम्हें। ये देशी घी की पूड़ियाँ हैं, अभी-अभी ताजी अपने सामने बनवाकर लाया हूँ। इस हुन्डे में रबड़ी है और दूसरे दोने में सब्जी। उठो, खाना खाओ। मुसीबतें तो जिन्दगी में आती रहती हैं; लेकिन आदमी खाना-पीना नहीं छोड़ देता।”

उमा उठकर बैठी। उसने पूड़ियों और रबड़ी की ओर देखा, फिर तमककर खड़ी हो बनिया से कहने लगी—“तुमसे कह चुकी हूँ कि मैं जान दे दूँगी, मगर यहाँ नहीं रहूँगी। मुझे भूख नहीं है। मेरी राह में काँटा न बनो। मैं……।”

“ठीक है। तुम्हें चला जाने दूँ, लेकिन मेरे तीन हजार रुपये कौन देगा ! रुपये दे दो मैं अभी ताला खोले देता हूँ।

बनिये के इस व्यंग को उमा नहीं सह सकी। वह बिजली-सी तड़प उठी और दोनों हाथों से बनिये को पीटती हुई बोली—“कैसी रकम ? मैं नहीं जानती। ला, दे चाभी नहीं तो सच कहती हूँ कि मैं तेरा खून पी लूँगी।”

जब उमा के हाथ नहीं रुके तो बनिया को भी क्रोध आया। उसने उसके दोनों हाथ तेजी से पकड़ बलपूर्वक मरोड़ दिये और खिसिया कर बोला—“तू समझती होगी कि मैं बूढ़ा हूँ, कमजोर हूँ, मुझ से जीत जायेगी। लेकिन मर्द की ताकत को औरत नहीं पा सकती। खबरदार अब जो आगे ऐसी हरकत की।”

उमा निरुपाय हो गई। वह वही पर बैठ दोनों हाथों से मुँह छिपा रोने लगी।

बनिया ने उसके रोने की तनिक भी परवाह नहीं की। वह बैठकर पूड़ियाँ खाने लगा। उमा रोती रही, वह खाता रहा। बीच-बीच वह कहता जाता कि देखना है कब तक नहीं खाती हो और मेरे कहने पर नहीं चलती

हो। बड़े-बड़े शेर चीते तो काबू में कर लिये जाते हैं। फिर तुम तो एक अदना सी औरत हो।

उमा को अब क्रोध नहीं था। दुख से उसका कलेजा फटा जा रहा था। वह सोच रही थी भविष्य के लिये कि देखे आगे क्या होता है। भगवान ने कैसा दिन दिखलाया है। ऐसी परवश हो गई हूँ कि न जी सकती हूँ और न मर सकती हूँ। मेरी मौत और जिन्दगी का मालिक अब यह बनिया है।

बनिया खा पीकर सो रहा। उमा वही पर बैठे-बैठे रोते-रोते थक तन्द्रावस्था में लीन हो गई। काफी देर बाद जब उसकी चेतना जागी, उसने अपने को समझा तो देखा ताला अन्दर से खुला था और बनिया घर में नहीं था। वह समझ गई कि कही गया होगा। उसकी आँखों के सामने आँधेरा छा रहा था। वह इतनी घबड़ाई हुई थी कि उसका हृदय धोकनी सा चल रहा था। वह उठकर खड़ी हुई; दो कदम चली तो लगा कि चक्कर आ जायेगा और वह अभी गिर पड़ेगी। किसी प्रकार वह नल तक पहुँची, पानी दिया। पानी पेट में जाकर इतनी जोर से लगा कि वह दोनों हाथों से पेट पकड़ वहीं पर बैठ गई।

उमा देर तक नल के पास बैठी रही। फिर वह उठी और इधर-उधर दृष्टि दौड़ाती हुई देखने लगी कि इस बाहर वाले दरवाजे के अलावा इस मकान में कोई रास्ता नहीं है जिसमें मैं बाहर निकल सकूँ। उसने देखा कि उसमें न तो कोई जीना है ऊपर जाने को और न कोई सीढ़ी ही। मकान घोंसला जैसा बना है। उसमें कोई दूसरा रास्ता नहीं है।

इस तरह बेबसी और मजबूरी में उमा के दिन कटने लगे। उस दिन तो नहीं, दूसरे दिन सवेरे उसने खाना खाया। वह अर्हानिश इसी समस्या में उलझी रहती कि मुझे क्या करना चाहिये। इस कँद से छुटकारा मिल सकता है या नहीं! मेरा मुकद्दर मुझे धोखा देगा या साथी बनेगा। एक समस्या से निकलती हूँ दूसरी में फँस जाती हूँ। यह बनिया और इस मकान

की ऊँची-ऊँची दीवालें, ये सब बाधक है मेरी राह के । कह नहीं सकती कि क्या होगा । मेरा पतन होगा या मेरी मुक्ति । यह सब भविष्य के पर्दे में है । काश ! मुझे एक बार जगदीश मिल जाता । फिर चाहे कोई मेरा सिर कलम कर लेता ।

३०

सहालगे चल रही थी । सागर के ब्याह वाले आते । बसुमती और बाबू श्यामलाल जब कोई ब्याह तय करने के लिये राजी होते तो सागर इन्कार कर देता और यह आड लेता कि पहले मेरा ब्याह नहीं, शेखर दादा का होगा । अब की बार वे मुझे पूरा-पूरा विश्वास दिला गये हैं कि जल्दी ही लौट आयेगे ।

दम्पति पुत्र को समझाते कि अगर शेखर का कोई कायम मुकाम होता तो हम लोग पहले उसी का ब्याह करते । मगर उसका तो कही पता ही नहीं है । इतने दिन हो गये, उसकी कोई खबर नहीं मिली । पता नहीं कहाँ होगा । आखिर तुम्हारे ब्याह को कब तक रोका जा सकता है ।

लेकिन सागर बिल्कुल अटल था । वह कभी ब्याह के लिये हाँ नहीं करता । और एक दिन बाप जब क्रोध से भर गया, झुझला उठा तो उसने कहा कि लाओ, शेखर को दूढ़ कर लाओ । मैं पहले उसी की शादी करता हूँ । इस पर सागर चल दिया लखनऊ की ओर । वह गोपाल के यहाँ आकर ठहरा ।

दोनों मित्र बहुत दिन बाद मिले थे । घंटों तक उनकी बातें ही नहीं

खत्म हुई। फिर प्रसंग छिड़ गया शेखर का। गोपाल ने बतलाया कि वह उसे इस बीच एक दिन भी नहीं मिला। पता नहीं यहाँ है या नहीं।

सागर सबेरे गया था। तीसरे पहर तक वह गोपाल के घर में रहा। फिर दोनों दोस्त शेखर की तलाश में निकले। वे होटलों के चक्कर काटते हुए बार और काफी हाऊस आदि जगहों में भेरे। साँझ हो रही थी। वे घुड़दौड़ के मैदान नहीं जा सके, क्योंकि बहुत थक गये थे।

दूसरे दिन भी सागर और गोपाल के सभी प्रयत्न बेकार गये। शेखर का पता नहीं लगा। रात को जब दोनों मित्र पास-पास लेटे तो सागर के विषय में वे बातें हुईं जिनमें निराशा भर रही थी। दोनों हाँ दुखी थे। और दुख उसे होता है जो कि किसी का अपना या हमदर्द होता है। गोपाल ने कहा—“सागर, अब व्यर्थ है। शेखर के लिये हम लोग कब तक भटकेंगे। वे अगर यहाँ होंगे तो भी नहीं मिलेंगे। सारा शहर तो छान मारा। मुझे उम्मीद कम नजर आती है।”

सागर ने एक लम्बी साँस ली और धीरे-धीरे कहने लगा—“कुछ भी हो, गोपाल। हमें शेखर दादा का पता लगाना ही होगा। मेरा मन कहता है कि वे जरूर मिलेंगे। मैं तो यह सोचकर आया हूँ कि चाहे मुझे पूरा हफ्ता ही क्यों न लग जाये, लेकिन मैं उनकी खोज करके ही जाऊँ और यही नहीं, उन्हें अपने साथ ले जाऊँगा। उन पर यह प्रतिबंध लगा दूँगा मैं और बाबू जी की ओर से कि जब तक उनका ब्याह नहीं हो जाता वे घर में कहीं नहीं जायेंगे।”

गोपाल कुछ हँसा और सहज स्वर में बोल उठा “सागर, योजना तो तुमने बहुत लम्बी बना ली; मगर शेखर दादा मिलेंगे तभी तो उन्हें कानपुर ले जाओगे। अभी तो उनका कही पता ही नहीं है। और यह बात मेरी समझ में नहीं आती कि वे तुम्हारे घर में रहेंगे, तुम लोग उन पर प्रतिबंध लगाओगे। आजाद परिन्दे कैद में नहीं रह सकते। वे किसी के साथी नहीं होते, हमेशा अपने मन की करते हैं। खैर दूँदो, शायद पता लग जाये।”

दोनों मित्र जब तक सोये नहीं, इसी तरह आपस में बातें करते रहे।

सागर ने सपने में देखा कि शेखर उसे एक होटल में मिल गया है। वह उसे अपने साथ लिवा लाया है। दोनों भाइयों में हँस-हँस कर बातें हो रही हैं। दोनों ट्रेन पर बैठे हैं। गोपाल उन्हें भेजने आया है। गाड़ी सीटी दे रही है। उसके छूटते ही सहसा शेखर दूसरी खिड़की से बाहर कूद गया तथा अचानक सागर की आँखें खुल गईं। वह उठकर बैठ गया। उसने देखा गोपाल सो रहा है।

सागर लेटा नहीं। वह बैठा रहा। रात अब बीतने पर थी। सागर के मानस में शेखर का ही प्रसंग चल रहा था कि सवेरे मुझे कहाँ जाना चाहिये, किस जगह शेखर दादा मिल सकते हैं ?

सवेरा हो गया। सागर उदास का उदास ही रहा। उसके मन में कोई उमंग नहीं थी और न अपने में वह ताजगी ही महसूस करता। वह बहुत ही मलिन था, बहुत ही मुस्त; क्योंकि जिस कार्य के लिये घर से निकला था वह अभी तक नहीं हुआ था और भविष्य में भी पता नहीं सफलता मिले या न मिले।

३१

नाका हिडोला के चौराहे पर सेठ गणेश प्रसाद का बहुत बड़ा तिमन्जिला मकान था। उनका किराने का कारबार होता था। अमीनाबाद में थोक की दूकान थी। रोजगार में मुनाफे के अलावा उन्हें बारदाने में इतना अधिक बचता था कि उनकी गृहस्थी का पूरे साल भर का खर्च उसी में पूरा हो जाता था। इस भाँति दिन पर दिन उनके पास लक्ष्मी की वृद्धि होती चली गई।

सेठ जी की अवस्था पचास को पार कर गई थी पर अब तक वे निःसन्तान थे । पहले उन्होंने विचार किया कि कहीं से कोई लड़का गोद ले लें, अनाथालय से जाकर खरीद लायें; लेकिन फिर यह सोचकर विचार बदल दिया कि ऐसे में उनकी सम्पत्ति खतरे में पड़ सकती है । खानदान वाले उनके दत्तक पुत्र को मनमाने ढंग से हैरान कर सकते हैं । रुपये पैसे के मामले को लेकर उससे मुकदमेबाजी हो सकती है ।

इसके अतिरिक्त कौन ऐसा व्यक्ति है जो सांसारिक होते हुए भी सन्तान सुख से वंचित रहना चाहेगा । सेठ जी यह सोचने लगे कि मैं लड़का गोद लूँ या अनाथालय से लाऊँ, वह दत्तक पुत्र ही कहा जायेगा और लोग मुझे निरवंशी ही कहेंगे । ऐसे ही सेठानी भी जब तक जियेगी बन्ध्या (बाँझ) के नाम से पुकारी जायेंगी । क्यों न ऐसा करूँ कि कहीं से मुझे नवजात शिशु प्राप्त हो जाये । चाहे मुझे लम्बी से लम्बी रकम देनी पड़े । बान आसानी से बन जायेगी कि सेठानी के पुत्र हुआ है ।

शेखर गणेशप्रसाद से अक्सर मिलता-जुलता रहता था; क्योंकि सेठ जी थे रंगीन तबियत के और शेखर उसके माधन उनके सम्मुख प्रस्तुत करता रहता था । सेठ जी ने जब शेखर को अपनी यह योजना बतलाई तो उसने फौरन ही सोच लिया और उनसे कहा कि दस हजार रुपये दीजिये । मैं नवजात तो नहीं हूँ बारह-चौदह दिन का लड़का लाकर दूँगा ।

सेठ जी राजी हो गये । सौदा पट गया; लेकिन उन्होंने शेखर को रुपया पहले नहीं दिया । यह कहा एक हाथ लड़का दो और दूसरे हाथ रुपये ले लो । बस ! बात पक्की हो गई । समय निश्चित हो गया । रात को जब दो बजे शेखर उमा के लालबाग वाले घर में अपनी चारपाई पर लेटा था और उमा अपनी चारपाई पर सो रही थी तभी बाहर सेठ जी के आदमियों ने मुँह से सीटी बजाई । शेखर सोया नहीं वह झींझ मूँदे लेटा था । उसने चुपचाप सोते हुए लड़के को उठाया । फिर धीरे से जाकर कुन्डी खोल दी । लड़का आगन्तुकों के हवाले कर दिया और सौ-सौ के सौ नोट गिन कर अपनी पर्स में डाल लिये । वापस आकर उसने कुन्डी बन्द कर ली और पर्स वहीं

एक ओर कोने में छिपा दी जहाँ कूड़ा पड़ा रहता था और कुछ फूटी हुई ईंटों का ढेर लगा था ।

यही कारण था कि जब बच्चा खोया तो उमा ने पाया कि शेखर वही था उसके घर में, और सो रहा था । इसके बाद जब वह आया तो चलने समय पर्स चुपके से निकाल ली और फिर एक बैंक में अपना सेविंग एकाउन्ट खोल रुपया जमा कर दिया ।

इधर सेठ जी ने यह स्वाँग रचा कि सेठानी अस्पताल गई हैं, उनके लड़का हुआ है । सेठानी को तिमन्जिले के एक कमरे में गुप्त रूप से रखा गया । केवल दो विश्वामपात्र नौकर और एक नौकरानी इस रहस्य को जानते थे । दस दिन बाद सेठानी प्रकट हुई । घर में उत्सव मनाया गया । लड़के को लोगों की नजरों से दूर रखा गया, क्योंकि वह दस दिन का न होकर ढाई तीन महीने का था ।

इस तरह सेठ गणेशप्रसाद बाप बन गये और सेठानी माँ । उमा की गोद पुत्र से रिक्त हो गई । यह सब होने के लगभग एक महीने बाद शेखर पहुँचा मठजी के सामने और कहने लगा कि सेठ जी आज मुझे कुछ रुपये की जरूरत पड़ गई है । आपके पास प्राया हूँ । मुझे यकीन है कि आप इन्कार नहीं करेंगे ।

इस पर सेठ जी ने जबाब दिया कि जो दस हजार ले गये थे, वे क्या हुये । शेखर फौरन ही उत्तर में कहने लगा कि जिससे लड़का लाया था उसको दे दिये । मैंने तो एक पैसा भी नहीं लिया, न आप से और न उससे । मुझे एक हजार रुपये की जरूरत है । आप दे दीजिये, जल्दी ही वापस कर दूँगा ।

सेठ जी की समझ में नहीं आया । वे हीला-हवाला बताने लगे । तब शेखर ने दूसरी नीति अपनाई । उसने निगाह बदल ली और सेठ जी से बोला—“तो आप नहीं देंगे रुपये । कोई बात नहीं । मैंने तो अपना समझकर माँगे थे । जब आपको मुझसे हमदर्दी नहीं तो मैं भी आपको अपना क्यों समझूँ । मैं पूछने वाले लोगों को बता दूँगा कि सेठानी ने पुत्र को जन्म नहीं दिया, वरन रुपये देकर खरीदा गया है ।”

इस प्रकार सेठ जी शेखर की घुड़की में आ गये । उन्होंने रुपये दे दिये और उससे सतर्क रहने लगे ।

×

×

×

एक स्थान और था जहाँ शेखर नित्य तो नहीं कभी-कभी जाता था । चौक में यह कोठा था मोतीबाई का । यद्यपि वे प्रौढ़ हो आई थी, लेकिन लगता था कि उनकी उम्र पच्चीस वर्ष से अधिक की नहीं है । उनके यहाँ और भी दो-तीन नवयुवतियाँ थी जो समाज के द्वारा सताई गई गुन्डे-दलालो के हाथों बेची गई और अब मोतीबाई के आसन में थी । वे खरीदी हुई बाँदियाँ थी । मालकिन की आज्ञा के बिना हिल-डुल भी नहीं सकती थी ।

शेखर मोतीबाई के यहाँ जाता । थोड़ी बहुत देर मन बहलाकर चला आता । बाई जी भी एक ऐसी लड़की की तलाश में थी जो मृत्यु के बाद उनकी उत्तराधिकारिणी बने । यो तो वहाँ खरीदी हुई बाँदियाँ आती जानी रहती थी । लेकिन बाई जी का विश्वास किसी पर भी नहीं जमता । उनके कोई श्रीलाद नहीं हुई थी । एक दिन बातों ही बातों में उन्होंने शेखर पर अपना मन्तव्य जाहिर कर दिया कि मुझे एक लड़की चाहिये जो महीने-पन्द्रह दिन की हो । और जिसके लिये लोग यही समझे कि वह मेरी मन्तान है ।

शेखर ने कहा कि यह काम तो बहुत आसान है । मैं कर सकता हूँ । तुम्हें आठ-दस दिन के लिये अपने कोठे के एक कमरे में बन्द रहना पड़ेगा । मेरे और एक लेडी डाक्टर के अलावा कोई यह भेद नहीं जान पायेगा कि लड़की तुमने पैदा नहीं की, उसे मैं लाया हूँ । बाई जी राजी हो गई । वे दो हजार देना चाहती थी । लेकिन शेखर ने पाँच हजार पर बात पक्की की । बाई जी का खास नौकर जो बूढ़ा था वह एक दिन दोपहर को रुपये दे आया और लड़की ले आया । तब भी उमा नहीं जान पाई कि लड़की को भी शेखर ने ही गायब किया है । वह उस पर विश्वास करती रही और वह उसे बराबर ठगता रहा ।

शेखर का बैंक बैलेन्स पन्द्रह हजार रुपये का था । उसके बाद उमा की बिक्री के जब तीन हजार उसमें और जुड़ गये तो कुल योग अठारह

हजार का हो गया। वह भूल गया उमा को एक सपने की तरह, कि कोई उमा थी जिसकी जिन्दगी से वह खेला और फिर उसे गैर लोगो के हवाले कर दिया। सपना हर आदमी भूल जाता है। वह भी भूल गया और भविष्य के लिये उमा जैसी कोई दूसरी लड़की प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगा।

३२

शेखर ऐश और आराम की जिन्दगी व्यतीत करता। वह होटलों में डिनर लेता, घुडदौड़ देखने बराबर जाता। सिनेमा और बार भी उसके मनोरंजन का साधन बनते। उसके पास पैसे की गर्मी थी। वह दीन दुनियाँ को भूल चुका था। उसे सब ओर सुख ही सुख दिखलाई दे रहा था। और उमा बनिये के घर में कैद थी। वह सूनी साँसे ले रही थी। उसकी जिन्दगी मौत से भी गई-बीती हो गई थी।

बनिया उमा के साथ अच्छा व्यवहार नहीं करता। वह उसे बहुत सताता और इस बात पर राजी होने के लिये जोर देता कि वह उसकी हो जाये। लेकिन उमा अब दूसरे के हाथों की कठपुतली नहीं बनना चाहती थी। वह घ्रणा करती बनिये से। अपने हाथ दिन में एक बार रूखा-सूखा बनाकर खा लेती। कभी-कभी यह भी नहीं करती, भूखी ही पड़ रहती। बनिया भी हैरान था कि उसकी रकम चली गई और उमा उसके काबू से बाहर है। इस तरह धीरे-धीरे एक महीना बीत गया और दोनों ही अपनी-अपनी समस्या में उलझे रहे।

उमा घर में रहते हुए भी बनिये से नहीं बोलती। उसने अच्छी तरह जान लिया था कि मुझे जनम-कैद मिली है। मैं इससे छुटकारा नहीं पा

सकती । जगदीश अब इस जिन्दगी में मिलने से रहा । बच्चों का पता नहीं । न जाने वे किसी की गोद में खेल रहे हैं या होनहार के जबड़ों में फँस गये हैं बनिया यह भी नहीं कर सकता कि मुझे लाकर जहर दे दे और मैं खाकर। सो रहूँ । ऐसा क्यों करेगा वह । उसके रुपये मिट्टी में मिल जायेंगे । मुझ हाड़-माँस की गुड़िया को उसने खेलने के लिये खरीदा है । मैं उसकी मनमानी नहीं करती । क्या पता कहीं खिसियाकर वह भी मुझे बेच दे । मैंने कभी नहीं सोचा था कि मेरी यह गति होगी । मैं पुरुष जाति का शिकार बनूँगी और मेरा कोई भी हक नहीं रह जायेगा अपनी देह पर ।

बनिया हँसता, उमा से बातें करता । निरुत्तर रहती तो वह उसे पीटता, दो दो दिन तक खाने को नहीं देता । उमा बहुत तंग आ गई थी । उसका चेहरा मुरझा गया और बदन दुबला हो चला था । दिन पर दिन उसकी शक्ति क्षय होती गई । वह मृतप्राय सी हो गई थी । मनुष्य जब जिन्दगी से ऊब जाता है तो फिर वह जीना नहीं चाहता, मौत माँगने लगता है । उम समय मौत बहुत मँहगी हो जाती है । उमा नित्य निश्चय करती, लेकिन कोई भी युक्ति उसके सामने नहीं आ रही थी कि किस तरह अपने प्राण त्याग दे । आत्म-हत्या के बिना अब उसकी गति नहीं थी ।

निरन्तर प्रयास करने वाला व्यक्ति आखिर एक दिन पहुँच जाता है अपनी मन चाही मन्जिल पर । उसे रास्ता मिल जाता है और वह अकेले ही चलने लगता है । उमा ने यह तय किया कि वह फाँसी लगायेगी । रस्सी नहीं है तो क्या टुआ । वह चारपाई की अदवाइन खोल लेगी । उसको दोहरा-तेहरा और चौहरा कर लेगी । सबसे पीछे वाले कमरे की छत में जो एक लोहे का कड़ा लटक रहा है उसी में फन्दा डालेगी । चारपाई पर स्टूल रख लेगी । उस पर खड़ी हो फन्दा अपने गले में फँसायेगी और फिर सवेरे बनिया को उसकी लाश मिलेगी ।

रात को उमा ने फाँसी लगाने का दृढ़ निश्चय कर लिया था । सवेरे वह बनिया से खूब प्रेम से बोली । उसने स्वयं खाना बनाया और बनिये को खिलाया । बनिया सोच रहा था कि उमा अब राह पर आ रही है । ये लक्षण उसी के हैं । दोपहर को भी दोनों में बातें हुईं । बनिया बहुत खुश

था। उसने उमा से कहा कि मुझे गैर न समझो, मैं तुम्हारे लिये कुछ भी उठा नहीं रखूंगा। मेरा घर बस गया। बस मुझे और कुछ नहीं चाहिये। उसने उमा को साथ ले जाकर तिजोरी खोली। फिर गहने दिखलाता हुआ बोला कि ये सब तुम्हारे ही लिये है। जो चाहो निकाल लो और पहनो। उमा ने जबाब दिया कि फिर देखा जायेगा। उसे संतोष हो गया।

साँझ को भी बनिया प्रसन्न रहा। वह आज दही लाया खड़ी और मलाई भी। उसने उमा से पूडियाँ बनवाई और प्रेमपूर्वक भोजन किया। उमा ने भी खाया और बनिया ने बातें करती रही। इस तरह एक पहर रात बीत गई और बनिया सो गया।

अब उमा सोचें हुए काम को करने चली। अपनी निश्चित योजना के अनुसार उसने चारपाई की अदवाइन खोली। फिर उसको चौहरा किया। कमरे में जा उसने बत्ती जला दी और किवाड़े अन्दर से भेड़ लिये।

थोड़ी देर बाद वह कड़े में रस्सी बांधने में सफल हो सकी। उसने चारपाई पर दो टूक रखे। उनके ऊपर स्टूल। फिर वह खड़ी हुई। फंदा बंध चुका था। उसने टूक यथा स्थान रख दिये। अब केवल चारपाई पर स्टूल ही रह गया था।

फंदा इतने नीचे लटक रहा था कि स्टूल पर खड़ी होकर उमा उसे अपने गले में डाल सकती थी। उसने बत्ती बन्द कर दी। किवाड़े भिड़े रहे। वह चारपाई पर आ स्टूल पर चढ़ी। फिर अँधेरे में टटोलकर फंदा पकड़ा और गले में पहन लिया।

कमरा अँधेरे से भर रहा था। उसमें सूनापन समा रहा था और रात ले रही थी सूनी साँसे। सन्नाटे का आतंक सर्वत्र छा रहा था। उमा खड़ी थी स्टूल पर। उसके दोनों हाथ फंदे पर थे। वह उसको थोड़ा सा कसती, दम घुटता तो फिर ढीला कर देती। उसके पैर काँप रहे थे, दिल हिल रहा था। उस अँधेरे में उसके चेहरे के सामने कुछ आकृतियाँ स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रही थी। गर्मी का महीना था। वह पसीने से नहा रही थी। वह देख रही थी कि उसके सामने जगदीश खड़ा है। उसके दोनों कन्धों पर दोनों बच्चे बैठे हैं। वह चुपचाप खड़ा है और उसको देख रहा है। उमा का अन्तःकरण अजीब

उलझन से भर गया और मन कहने लगा कि मौत नहीं मुझे जिन्दगी चाहिये । मैं माँ हूँ और किसी की पत्नी ।

लेकिन दूसरे ही क्षण दृश्य बदल गया । बनिया का वीभत्स रूप उसके सामने आ गया और वह ढीले फदे को पुनः कसने लगी ।

रात आधी से अधिक हो गई और उमा फाँसी नहीं लगा पाई । वह अभी तक स्टूल पर खड़ी थी । फंदा उसके गले में था और वह न जाने क्या सोच रही थी । तभी महसा बाहर के किवाड़ों पर जोर से थपथपाहट हुई । वह चौक गई और किसी गुप्त भय की आशंका से काँप उठी कि कहीं बनिया मुझे इस स्थिति में न देख ले, जो मौत से भी हाथ धोऊँ । लोग मच कहते हैं कि मौत भी गस्ती नहीं होती । माँगने में वह कभी नहीं मिलती ।

किवाड़ों पर थपथपाहट जारी थी । बनिया भी जाग गया था । वह हड़बड़ाकर उठ बैठा और यह सोचकर मन ही मन डरा कि इतनी रात को कौन आया है । वह गुमसुम बैठा था और किवाड़ों पर किसी के दोनों हाथ बज रहे थे ।

३३

अब किवाड़ों पर थपथपाहट न होकर बाहर की कुन्डी खटकने लगी थी । उमा भी चौकन्नी हो गई । उसने मौत के लिये पक्का निश्चय कर लिया था । और बनिया, वह डरता-डरता दरवाजे पर गया । वहाँ आहट ली धीरे से पूछा—“कौन है ?”

“मैं हूँ सी० आई० डी० अफमर । किवाड़ें खोलो तुमसे कुछ काम है ।”

आगन्तुक की इस बात को सुनकर बनिया जैसे जिन्दा से मुर्दा हो गया। उसकी रूह काँप गई। वह एक क्षण में ही न जाने कितनी अशंकाओं से भर गया कि यह सी० आई० डी० अफसर मेरे घर क्यों आया है? भला मुझसे इसका क्या काम हो सकता है। कहीं उमा वाली बात का तो इसे कुछ पता नहीं लग गया। जरूर कुछ दाल में काला है। तभी यह इतनी रात को आया है।

अब कुन्डी खटकनी बन्द हो गई थी और आगन्तुक प्रतीक्षा कर रहा था किवाड़े खुलने की। बनिया एक बात यह भी सोच रहा था कि कैसे मान लूँ कि यह सी० आई० डी० अफसर ही है। कहीं कोई डाकू या लुटेरा तो नहीं है जो धोका देकर मुझसे किवाड़े खुलवा रहा है। मैं नहीं खोलूँगा कुन्डी, कोई भी हो। जिसे आना हो सबेरे आये और बात करे।

देरे होते देख बाहर खड़ा व्यक्ति तनिक रोब से बोला—“अरे। किवाड़े खोलिये। आपने सुना और फिर यह हरकत। मैं आप के घर की तलाशी लूँगा अभी और इसी वक्त।”

“क्यों? क्यों? क्या मैं कोई चोर डाकू हूँ। आप सबेरे तकलीफ करिये। इस समय……।”

अभी बनिया इतना ही कह पाया था कि अफसर का कंठ-स्वर तीव्र हो गया। वह डाँटकर कहने लगा—“सबेरे क्यों? मैं अभी आता हूँ। पुलिस का जत्था अपने साथ लाता हूँ। तुमने अपने घर में एक औरत को कैद कर रखा है। तलाशी अभी होगी। तब तक एक कानिस्ट्रबल को यहाँ खड़ा किये जाता हूँ। शराफत इसी में है कि किवाड़े खोल दो।”

अब बनिया के काटो तो बदन में लोहू नहीं। वह सोचने लगा कि अफसर ठीक कहता है और अब तलाशी से तो मैं बच नहीं सकता। उमा घर में मौजूद है। मैं गिरफ्तार कर लिया जाऊँगा। बेहतर यही है कि कुन्डी खोल दूँ और अफसर को अन्दर बुला लूँ। इसे कुछ सौ-पचास रुपये की रिश्वत देकर मामला दाब दूँ। शायद इसी लालच से यह अकेला आया है और इस वक्त।

बनिया कई क्षण तक असमंजस में पड़ा रहा। फिर जब अफसर ने

पुनः धमकी दी तो उसने डरते-डरते काँपते हाथों कुन्डी खोल दी। रात अँधेरी थी। जब बनिये ने गली की बत्ती जलाई तो उसने देखा कि अफसर हट्टा-कट्टा जवान है। उसके चेहरे पर काली नकाव पड़ी है। वह कोट और पतलून पहने है। उसके एक हाथ में टाच है और दूसरे में छोटा सा चमड़े का हन्टर। वह चला, आगे बढ़ा उसके बूट चरमराये। बनिये ने जल्दी से अन्दर की कुन्डी बन्द करली। वह पसीने-पसीने हो रहा था। उसके मुँह से बोल नहीं निकल रहा था।

उमा अब भी सनक खड़ी थी और यह सोच रही थी कि मालूम पड़ता है कि कोई आया है। उसने आगन्तुक और बनिये की कुछ भी बातें नहीं सुनी थी; क्योंकि उसका कमरा दरवाजे से दूर पड़ता था। इसके अतिरिक्त कमरे के किवाड़े भी बन्द थे। लेकिन जब आँगन में जूतों की चरमरहाट हुई तो वह मरने के लिये बिल्कुल तैयार हो गई। उसने पक्का निश्चय कर लिया कि जैसे ही बनिया या आने वाले ने किवाड़े खोले वैसे ही मैं फटा कस लूँगी और स्टूल नीचे गिरा दूँगी।

बनिये ने एक चारपाई बिछा दी और उसकी ओर इंगित कर खुशामद भरे स्वर में अफसर से बोला—“बैठिये हुजूर, बन्दा किसी लायक नहीं है। कुछ खिदमत का मौका दीजिये।”

यह कह बनिया अफसर को वहीं आँगन में छोड़ जल्दी से सामने वाले कमरे में गया। उसने बत्ती जलाई और फिर तिजोरी खोल एक सौ रुपये का नोट हाथ में दाव बाहर निकला। उसी समय बहुत फुर्ती से उसने उमा की चारपाई पर निगाह डाली। वह खाली मिली तो वह मन ही मन बहुत खुश हुआ कि उमा बड़ी समझदार है। अफसर के आते ही छिप गई।

बनिया अफसर के पास जा रहा था और अफसर उसकी ओर आ रहा था। तत्क्षण ही बनिये ने निकट आ उसके हाथ में सौ रुपये का नोट थमा दिया और गिड़गिड़ाकर बोला—“तलाशी लेने की तकलीफ क्यों करेगे, हुजूर। मेरे घर में कोई औरत वीरन नहीं है। जाइये, घर जाकर आराम कीजिये। आप को गलतफहमी हुई, सच कहता हूँ।”

अफसर ने दाँत पीसे और क्रोध से कड़ककर बोला—“मैं सरकार का पैसा खाता हूँ, नमक हराभी नहीं करूँगा। रिश्वत देने का मतलब साफ जाहिर है कि तुम कुसूरवार हो। तुम्हारे घर में मैं अभी तलाशी लेता हूँ। पहला जुर्म तो वह है और दूसरा यह जो तुम मुझे रिश्वत दे रहे हो। मेरे साथ आओ। मैं ऐसे मामलों में किसी के भी साथ रियायत नहीं करता।”

यह कह अफसर आगे-आगे चलने लगा। उसके हाथ की टार्च रोशनी फेकने लगी। वह कमरे और कोठरियाँ खोल-खोलकर देखने लगा। बनिया दुबका-दुबका सा उसके पीछे था। वह जब भी कभी कुछ कहने की कोशिश करता तो अफसर उसे डाँट देता और वह अपना सा मुँह लेकर रह जाता।

उमा ने अफसर और बनिये की मारी बाते सुनी। वह समझ गई कि पुलिस आई है और घर की तलाशी हो रही है। जरूर वह मुझे अपने साथ ले जायेगी और थाने में रखेगी। मैं तय कर चुकी हूँ कि तलाशी में पाने वालों को मेरी लाश ही मिलेगी। वह मृत्यु के लिये तैयार हो गई। उसमें जोश आ गया, आवेश समाने लगा। और वह ऐसे खड़ी हो गई जैसे कोई हँसकर जान देने के लिये फाँसी के तख्ते पर जा खड़ा होता है।

रात का अन्तिम पहर आधा हो चला था। अफसर घर का कोना-कोना देख रहा था। बनिया डर रहा था मन ही मन कि उमा आखिरी कमरे है। अफसर अभी वहाँ पहुँचता है। तब.....

अफसर खामोश था। रात का सन्नाटा घर में छा रहा था। उसके जूते चर-चर करते जिससे वह भंग होता और उमा सोचने लगती कि बस उसके कमरे के किवाड़े अब खुलने वाले हैं। वह फंदा कसने लगी पर ठीक उसी समय बूट की ठोकर से अफसर ने किवाड़े खोल दिये। उसने टार्च की रोशनी फेकी तो देखा कि एक स्त्री स्टूल पर खड़ी है। स्टूल चारपाई पर रखा है और स्त्री के गले में पड़ा है फाँसी का फन्दा जिसे वह जल्दी-जल्दी कस रही है।

बनिया भी धबड़ा गया। उसने जल्दी से कमरे की बत्ती जलाई और

अफसर उमा को डपट उसके पास जाता हुआ बोला—“खबरदार जो फाँसी लगाई ।”

लेकिन तब तक उमा ने घबड़ाहट में जल्दी में दोनों पैरों से स्टूल चारपाई के नीचे गिरा दिया । बनिया जोर से चीखा और अफसर शीघ्रता पूर्वक स्टूल उठा चारपाई पर रखने लगा ।

उमा गले में पड़ा ढीला फंदा अब भी कस रही थी । यद्यपि उसका दम घुट रहा था और साँस फूल रही थी ।

३४

अफसर स्टूल पर चढ़ गया । उसने एक हाथ में उमा को पकड़ा और दूसरे से उसके गले में पड़ा फंदा ढीला करने लगा । तब तक बनिया तेज धार का एक चाकू ले आया । उसने अफसर से कहा कि फंदा जल्दी खुलेगा नहीं, रस्सी काट दो ।

रस्सी क्या थी, वह तो चारपाई की अदवाइन थी, पतली सी डोर, चौहरी की हुई । चाकू से फोरन ही काट गई । उमा जो चाहती थी नहीं कर पाई । वह वही कमरे की फर्श पर मुर्दा सी बैठ गई । अभी तक उसकी साँस सध नहीं पाई थी, जोर जोर से चल रही थी । अफसर चारपाई पर बैठ गया और बनिये की ओर देखता हुआ डाँटकर बोला—“क्यों जी, यही है तुम्हारी करतूत । इस औरत को कहाँ से उड़ाया और यह फाँसी क्यों लगा रही था ? बस । चलिये आप दोनों कोतवाली । बयान वही पर लूँगा । मेरा काम पूरा हो गया । तुम पर तीन जुर्म बनते हैं । पहला औरत उड़ाने का, दूसरा

घूस का और तीसरा कि आप के घर में यह स्त्री मौत का फंदा लगाये खड़ी थी ।” यह कहकर वह उठ खड़ा हुआ ।

बनिया थर-थर काँपने लगा । उमा की भी आँखें खुली । उसे चेत हुआ कि अफसर के साथ उसे कोतवाली जाना होगा । क्या हालत होगी वहाँ । भंडा फूटेगा, सारा भेद खुल जायगा कि मैं किस बाप की बेटी हूँ । किस घर मे व्याही गई और जगदीश ने मुझे कैसे फुसलाया और फिर बिगाड़ा । उसके बाद बनिये के हाथ कैसे बिकी और फाँसी लगाने की नौबत क्यों आई ।

ठीक ऐसी ही हालत हो रही थी बनिया की । कोतवाली का नाम सुनते ही उसके देवता कूँच कर गये । वह सिटपिटा कर अफसर के पैरो पर गिर पड़ा और खुशामद करने लगा कि हुजूर माई बाप हैं, मुझ पर रहम करे । मेरी आबरू बचा ले । इस औरत को मैंने उड़ाया नहीं, खरीदा है । आप ही बतलाइये कि बुढ़ापे मे मेरे साथ अपना लड़की का व्याह कौन करता । यह अनाथ है इसके कोई नहीं है । शायद आप आ गये इस डर से फाँसी लगाने लगी । वैसे तो बहुत खुश रहती थी ।

अफसर ने उमा से कुछ नहीं पूछा; क्योंकि वह पहले ही कह चुका था कि बयान कोतवाली मे लूँगा । बनिया जल्दी से दौड़ गया । सौ रुपये का नोट अफसर की जेब मे था जिसको यह कहकर उसने रख लिया था कि तुम पर रिश्वत देने का मुकदमा चलाया जायेगा । यह नोट सबूत के लिये है । बनिया ने सौ-सौ के चार नोट लाकर फिर उसके कदमो पर डाल दिये और रोने गिड़गिड़ाने लगा ।

उमा यह सब देख रही थी । अफसर बनिये को डाँट रहा था कि तुम गुनाह पर गुनाह किये चले जा रहे हो । मैं रिश्वत नहीं लेता । घूस खाना पाप होता है ।

लेकिन बनिया दूँधाड़ी तक हाथ बढ़ा रहा था कि सरकार दुनिया मे स्याह-सफेद सब कुछ चलता है । आप नेक आदमी मालूम होते है । दो-सौ और लाता हूँ । मुझे बचा लीजिये, कानून के शिकंजे में न जकड़िये ।

बनिया दस-दस के बीस नोट और ले आया । अब सात सौ हो गये ; लेकिन अफसर टस से मस नहीं हुआ । वह अपनी ही बात कहता रहा कि

मुझे रुपये का लालच देकर गलत काम करवाने की कोशिश न करो। मैं उन लोगों में से नहीं हूँ जो पाप की कमाई खाते हैं। आप चलते हैं या मैं बजाऊँ सीटी और बुलाऊँ पुलिस को यही।”

“नहीं ! नहीं ! ऐसा न कीजिये, परवरदिगार। मैं सी और लाता हूँ। मुझे इस मामले में छोड़ दीजिये। आपका यह एहसान जिन्दगी भर नहीं भूलूँगा।”

बनिया इतनी बात कह फिर गया और पाँच-पाँच के बीस नोट ले आया। अब आठ सौ हो गये। अफसर फिर भी नहीं पसीजा। वह उठकर खड़ा हो गया और आँगन में जाने लगा तो बनिया उसके पीछे भागा। उसने उसके पैर पकड़ लिये और रोकर बोला—“हुजूर गुलाम को माफ कर दीजिये। मैंने कुछ भी नहीं छिपाया। सब कुछ आपको बना दिया है। सीटी न बजाइये। पुलिस से मुझे डर लगता है। बस दो सौ और ले लीजिये एक हज़ार हो जायेंगे। मेरी जान बख्शिये। मैं……।”

अफसर आँगन में जाकर खड़ा हो गया। बनिया रुपये-रुपये के नोटों की सौ-सौ वाली दो गड्डियाँ और ले आया। सब रुपये उठाकर उसने अफसर को दे दिये। अफसर ने नोट अपनी जेबों में भर लिये और बनिया से बोला—“अच्छा जाओ। तुम्हें माफ किया। आयन्दा ऐसी हरकत न करना।”

बनिये ने समझा कि जान बची लाखों पाये। अफसर अब चला जायेगा; लेकिन यह क्या ? वह दो कदम चलकर ही रुक गया और पीछे मुड़ बनिये से बोला—“हाँ तुम क्यों चलोगे अब कोतवाली। मैं तुम्हें नहीं ले जाना चाहता। इस औरत को मेरे साथ कर दो। वहाँ इसके बयान लिखवा दूँगा कि यह तुम्हारी ब्याहता स्त्री है। पी फट रही है, सवेरा होने वाला है। सूरज निकलते-निकलते यह तुम्हारे घर वापस भेज दी जायगी।”

बनिये पर जैसे गाज सी गिर पड़ी। वह सकते की हालत में आ गया, कुछ भी नहीं बोल पाया। और उमा भी एकदम घबड़ा गई। वह सोचने लगी कि यह सब क्या होने जा रहा है। मैं मौत माँगती थी और मुझे जिन्दगी

मिल रही है। कोतवाली जाकर मेरी क्या गति होगी यह नहीं जानती। क्या करूँ बनिया भी चुप है। वह भी कुछ नहीं बोल रहा है। अफसर मुझे जरूर ले जायेगा।

बनिया खामोश था। अफसर ने रोब दिखलाया। वह गरज कर बोला—“सुना नहीं, मैंने क्या कहा? भेजो इस औरत को मेरे साथ नहीं तो मैं तुम्हें भी ले चलता हूँ।”

बनिया बलर-बलर रोने लगा। उसके हाथ बँधकर रह गये और वह रोते-रोते कहने लगा—“ऐसा न कीजिये। इस बेचारी को न ले जाइये। यह तो वहाँ बोल भी नहीं पायेगी, डर जायेगी। आप...।”

“आप-बाप मैं कुछ नहीं जानता।” यह कहकर अफसर ने उमा से कहा—“तुम बैठो क्यों हो? चलो, मेरे साथ चलो, मैं तुम्हें सबेरे यहीं पहुँचा दूँगा। संकोच से काम नहीं चलेगा। तुम्हें चलना पड़ेगा। ऐसे नहीं जाओगी तो मैं पुलिस बुलाऊँगा। वह तुम्हें गिरफ्तार करके ले जायेगी।”

उमा सिसकने लगी। बनिया भी रो रहा था और अफसर अब हाथ पकड़कर खींच रहा था उमा को। वह बल-प्रयोग कर रहा था। उमा खिचती जा रही थी। आखिर जब उसके पाँव जमीन पर टिके न रह सके तो वह चलने लगी। क्योंकि उसके अन्दर यह भय समा गया था कि अगर मैं सीधी तरह अफसर के साथ नहीं जाती हूँ तो वह सीटी बजाकर पुलिस बुला लेगा और मुझे यहाँ से जबरदस्ती ले जाया जायेगा।

आगे-आगे अफसर था पीछे-पीछे उमा; दोनों दरवाजे से बाहर जा चुके थे। बनिया खड़ा-खड़ा देख रहा था। वह मन ही मन पछता रहा था और सोच रहा था कि तीन हजार में उमा को खरीदा था, एक हजार अफसर घूस ले गया। चार हजार रुपये मिट्टी में मिल गये। मुझे यकीन नहीं होता कि उमा अब लौटकर आयेगी।

रात्रि का अन्तिम पहर पयान कर रहा था। पूरब में सफेदी की आभा स्पष्ट हो चली थी। उमा सी० आई० डी० अफसर के साथ चली जा रही थी। राह तय हो रही थी। दोनों पदगामी थे। नगर के जनपथ शून्य पड़े

थे। उनके किनारे पर लगी बिजली की बत्तियाँ दिये सी टिमटिमा रही थीं। जहाँ तहाँ बिजली घर के कर्मचारी कन्धे पर बाँस रखे नजर आते जिसमे ऊपर लोहे की अर्धवृत्ताकार अँगुलीसी बँधी थी। उससे वे बत्तियों के स्विच दाबते, वे बुझ जातीं। उमा यह देख रही थी, वह मौन थी। और अफसर जब थोड़ी दूर निकल आया तो उसने एक बार पीछे मुड़ कर गौर से देखा उमा की ओर। वह सहम गई और सोचने लगी कि शेखर मुझे मिला था सी० आई० डी० इन्स्पेक्टर के रूप में और यह अफसर भी मुझे अकेला ही लिये जा रहा है। कहीं कोई गुल न खिल जाये। मैं औरत हूँ और जवान हूँ। मैं इसके अधिकार में हूँ। अगर इसने भी मेरे साथ खिलवाड़ किया तो.....।

उमा असमन्जस में थी और अफसर के विषय में अभी सोच रही थी कि उसने सहसा अपने चेहरे पर से काली नकाब हटा दी और पीछे मुड़ हँसता हुआ उमा से बोला—“पहचाना उमा ! मैं तुम्हारा जगदीश हूँ।”

उमा के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। वह भौचक्की सी हो आँखें फाड़ और मुँह फँला बोल उठी—“तुम जगदीश ! कहाँ रहे ? मुझे कहाँ भेज दिया था और अब कहाँ लिये जा रहे हो ? बनिया जिसके हाथ तुमने मुझे बेचा था, वह तो कहता था कि तुम्हारा नाम शेखर है। और तुम्हारा काम ही है मुझ जैसी भोली युवतियों को बहकाना, फिर उनके साथ ऐश करना, उनका सौदा करना और नये शिकार की तलाश में रहना। तुमने मुझे धोखा दिया। तुम झूठ बोले कि मैं तुम्हें अपने माँ बाप के यहाँ लिये जा रहा हूँ।”

शेखर रुक गया। वह हँसना रहा और उमा क्रोध में उबलती रही। वह कहती जा रही थी आवेश-भरे शब्दों में—“बनिये से तुमने मेरे माँदे के तीन हजार लिये और अब ठगविद्या करके मेरे सामने एक हजार और ले आये। मुझे यकीन हो गया कि तुमने ही मेरे बच्चों को गायब किया, तुम्हीं उनके चोर हो, क्योंकि बनिया कहता था कि उमा तुम्हारे बच्चों को शेखर ने ही किसी के हाथ बेच दिया होगा। वह भला आदमी नहीं, बहुरूपिया है, चार सौ बीसिया। मैं नहीं जाऊँगी तुम्हारे साथ। तुम्हारे रोम-रोम में छल और

फरेब भरा है। बोलो ! कहाँ है मेरा लड़का और कहाँ है लड़की ? मुझे मेरे बच्चों का पता बता दो। मैं उन्हें एक बार नजर भरकर देख लूँ। फिर खेल जाऊँ अपनी जान पर। मुझे तुमसे इतनी नफरत हो गई है कि तुम्हारी सूरत भी नहीं देखना चाहती हूँ।”

इस पर शेखर जोर से हँसा और हँसते-हँसते बोला—“तुम्हें क्या हो गया है उमा, कैसी बातें कर रही हो ? पहले मेरी बात तो सुनो। असलियत को समझे बगैर ही बड़बड़ाये जा रही हो। नाम मेरा जगदीश ही है। हाँ यहाँ शहर में कुछ लोग मुझे शेखर कहते हैं। बनिये को मैं जानता हूँ, यह भी सही है। वह बदमाश आदमी है। चोरी का माल खरीदता है। इस नाते मैं भी कभी-कभी उसका गला दाब कर कुछ थोड़े बहुत रुपये ऐंठ लेता हूँ। लेकिन उसके हाथ मैंने तुम्हें बेचा नहीं। वह झूठ बोलता है। इसमें जो धोखा हुआ वह तुम्हें नहीं मालूम है।”

“अच्छा ! तो धोखा हुआ। वह कैसे ?” उमा शेखर के सामने खड़ी थी। उसने व्यंग्यात्मक प्रश्न किया शेखर को चिढ़ाने के लिए।

श्रीर शेखर कहने लगा—“हाँ उमा, जो कार मेरे घर से आई थी उसी के बराबर में एक टैक्सी भी खड़ी थी। जल्दी में मैंने ध्यान नहीं दिया और तुम भी धूँधट डाले थी। मैं जब तक बैठू-बैठूँ उस टैक्सी ड्राइवर ने गाड़ी स्टार्ट कर दी। तब हम लोग चौक गये और फौरन तैयार हुए उसका पीछा करने को। हमारा ड्राइवर गाड़ी स्टार्ट करता रहा। वह नहीं चली; तब हम लोगों की हैरानी का ओर-छोर नहीं रहा। टैक्सी काफी आगे जा चुकी थी और हमारी कार चल नहीं रही थी। ड्राइवर ने कहा कि इन्जन में कुछ खराबी है। पता नहीं उस टैक्सी ड्राइवर ने उसमें कौन सा जादू कर दिया था कि उसकी बैटरी ही शार्ट हो गई। कार भला चलती तो कैसे। इसके रिक्शों के सिवा वहाँ पर कोई दूसरी सवारी नहीं थी। इसके अलावा अफसोस और मेरा दुर्भाग्य कि टैक्सी नजरों से ओझल हो चुकी थी। यह कुछ हुआ उमा। शायद वह बदमाशों के गिरोह की टैक्सी थी। उन लोगों ने तुम्हें कई दिन पहले से ही ताड़ रखा होगा।”

उमा की समझ में शेखर की ये बातें बिल्कुल नहीं आईं। वह सारी बातों का जवाब एक लम्बी साँस लेकर थोड़े में देने लगी—“खैर कुछ भी हुआ ! अब तुम मुझे कही भी लिए जा रहे हो। मैं नहीं जाऊँगी ! मैं जानती हूँ कि तुम मुझे नहीं बताओगे मेरे बच्चों का पता। तुम क्या जानो माँ की ममता। तुम पत्थर दिल इन्सान हो। तुम्हें पसीजना नहीं आता मैं जाती हूँ मुझसे तुमसे कोई मतलब नहीं है। जब सब कुछ लुट गया तो मैं सूनी जिन्दगी न बिता उसका अन्त कर दूँगी। तुम जैसे पापियों से पीछा तो छूट जायेगा।” यह कहकर उमा एक झटके के साथ पीछे मुड़ी और चल दी गति वेग भरकर।

शेखर उसके पीछे भागा। वह जोर से चिल्लाया—“यह क्या उमा ? तुम जा कहाँ रही हो ?”

“जहाँ भगवान ने दुखियों के सिर छिपाने के लिये जगह बनाई है। मेरा कोई नहीं, तुम मेरे दुश्मन हो। पीछा न करो। कहती हूँ लौट जाओ। मैं...”

अभी उमा इतना ही कह पाई थी कि शेखर ने आगे बढ़ उसका हाथ पकड़ लिया। जब वह बल प्रयोग करने लगी अपने छुटकारे के लिये तो उसने उसकी कलाई मरोड़ दी। वह चीख मारकर रह गई। तब शेखर उसका हाथ छोड़ दोनों कन्धे झकझोर दाँत पीसकर कहने लगा—“अपनी मर्जी से चली जाओगी। तुम आजाद नहीं, मेरे अधिकार में हो। मैं तुम्हें गोली मार सकता हूँ, कैदी बनाकर रख सकता हूँ और रानी का रूप भी दे सकता हूँ। अगर तुममें क्षमता हो, सफाई हो तो मेरी बात सुनो, समझो और उस पर अमल करो। मैंने एक और घर लिया है किराये पर। वहाँ पड़ोस में संगीत शिक्षा-केन्द्र है। तुम वहाँ रहो। संगीत की शिक्षा लो। मैं तुम्हें मुक्त करता हूँ जैसा कि तुम चाहती हो।”

उमा को कुछ ढाढ़स बँधा। वह बिना कुछ सोचे समझे ही तत्क्षण कहने लगी, “हाँ मेरे लिये संगीत शिक्षा-केन्द्र ही ठीक रहेगा। मैं तुमसे दूर रहना चाहती हूँ। तुम चले जाओ। मुझे वह जगह बता दो। मैं स्वयं पहुँच

जाऊँगी। और वहाँ जो जगह तुमने किराये पर ली है। उसका ताला खोल दो। उससे मुझे कोई मतलब नहीं है।”

शेखर अब हँसा और धीरे-धीरे कहने लगा—“मैं तुम्हें वहीं लिये चब रहा हूँ। वहीं रहना, मैं कभी-कभी आकर मिल लिया करूँगा। रह गई वच्चो की बात। उनका मुझे खुद ही दुख है। परमात्मा की सौगन्ध खाता हूँ, उमा ! मैंने उन्हे किसी को नहीं दिया। अब मेरी समझ में आता है कि उन्हें वे ही बदमाश उठा ले गये होंगे जिनकी टैक्सी तुम्हें वहाँ से उड़ा ले गई थी।”

उमा सुनती रही, शेखर कहता रहा। फिर दोनों चल दिये सामने की ओर। सड़क पर शान्ति थी और सबेरे की सफेदी में चमक रहे थे इर्द गिर्द के गगनचुम्बी मकान। दोनों एक बड़े से दरवाजे के बीच से गुजरे तो शेखर ने कहा कि देखो उमा यह गोल दरवाजा है। कभी तुम इस तरफ मेरे साथ घूमने नहीं आई। उमा देखने लगी दरवाजे को, फिर उसके साथ आगे बढ़ी। एक तिमन्जिले मकान का दरवाजा खुला था। जीने की बत्ती जल रही थी। जीना खड़ा था एकदम सीधा, नीचे से तीसरी मन्जिल तक जाता था। शेखर जीना चढ़ने लगा। उमा तनिक रुकी तो वह पीछे मुड़कर बोला—“अरे यही तो है वह संगीत शिक्षा केन्द्र जहाँ तुम्हें आना था। आओ ! ऊपर आओ।”

उमा कई क्षण तक ज्यों की त्यों स्तब्ध खड़ी रही। फिर उसमें संज्ञा जागी और उसने डरते-डरते जीने की पहली सीढ़ी पर धीरे से पैर रखा। ऊपर वीणा के तार झनझना रहे थे। कोई प्रभाती गा रहा था। नारी कंठ था बहुत ही मधुर बहुत प्यारा। वह गा रही थी—“प्रातः समय उठ जनक-नन्दनी, रघुकुल नाथ जगावत है।”

उमा को लगा कि वह उचित जगह पर आ गई है। वीणा का बजना, प्रभाती का गाना ये सब शुभ सूचक हैं मंगल-प्रतीक। ईश्वर भला करे जगदीश का जो मुझे बनिये की कैद से छुड़ा कर यहाँ ले आया।

तीसरी मन्जिल के एक सजे सजाये कमरे में शेखर उमा को ले गया। वहाँ एक प्रौढ़ा स्त्री बैठी थी। उसके बदन पर कीमती सफेद जर्जेट की

साड़ी थी, आँखों पर चश्मा चढ़ रहा था, सोने की कमानी लगा और हाथों में दो-दो थीं सोने की चूड़ियाँ। वह इस लिवास में थी और सरलता जैसे उसके चेहरे से टपकी पड़ रही थी। उसने फौरन ही उठकर उमा को वक्ष से लगा लिया और फिर सिर पर स्नेहपूर्वक हाथ फेरती हुई बोली—“आओ बेटा ! कल जगदीश बाबू मुझसे तुम्हारे लिये कह गये थे। तीन चार लड़कियाँ यहाँ और है। वे भी गाना बजाना सीखती हैं। यहाँ तुम्हारा मन लग जायेगा, किसी बात की तकलीफ नहीं होगी।”

उमा को और भी अधिक संतोष हो गया। वह मन ही मन सोचने लगी कि यह स्त्री दयालु है। इसमें मेरा हिन ही होगा अहित नहीं। प्रोढ़ा ने उसे एक कुर्सी पर बैठा दिया। शेखर ने उसे कुछ इशारा किया। वह उठकर चल दी और जाते-जाते कहती गई कि बँठो बेटा मैं अभी आई।

उमा उस कमरे में अकेली बैठी थी। उसी के बगल में दूसरे कमरे में बज रही थी वीणा। वह गीत सुनने लगी और अपने को भूलने लगी कि कहाँ बैठी है और किस लिये आई है।

+ + + +

शेखर मोती बाई को बीच की मन्जिल में लिवा ले गया और बोला—“सोदा तुम्हारे घर आ गया है। कीमत चुका दो। बस ! अब तुम जानो और तुम्हारा काम।”

मोती बाई हँस पड़ी और बोली—“अभी देती हूँ रुपये। इसका मिजाज कैसा है, चिड़चिड़ी तो नहीं है ? देखो, देर में काबू में आती है या जल्दी ?”

बाई जी बात समाप्त करते-करते तिजोड़ी तक पहुँच गईं। वे ताला खोल सौ-सौ के नोट गिनने लगी। और शेखर हँसकर कहने लगा—“बड़ी डरपोक है। उसमें न तो बुद्धि है और न साहस। छोटी सी घमकी में ही काम बन जायेगा। जब इस कोठे की रानी बन जायेगी तो मुझे याद भी नहीं करेगी कि मैंने उसे जमीन से उठाकर आसमान में पहुँचा दिया।”

बाई जी मुस्करा पड़ीं और सौ-सौ के बीस नोट शेखर के हाथ में दे बोल उठीं—“तब तो फिर अच्छा है। इन नई लड़कियों से मैं डरती हूँ। परसाल सहारनपुर की एक विधवा फँस गई। उसे बहुत डराया, धमकाया; मगर वह पेशे के लिये राजी नहीं हुई और आखिर में भाग गई।”

शेखर बाई जी को सन्तुष्ट करने के लिये यह कह कर चल दिया कि बेफिक्र रहिये। उमा सब कुछ करेगी। वह नाचेगी, गायेगी। आगे चलकर उसके बड़े-बड़े मुजरे होंगे। तुम्हारी कसौटी पर बराबर कसती जायेगी तो एक दिन इस शहर की मशहूर तवायफ़ बन जायेगी। तब मेरा शुक्रिया अदा करना कि शेखर ने माल तुम्हें कैसा चोखा दिया था।

शेखर चला गया। बाई जी ऊपर पहुँची जहाँ उमा बैठी थी। वे उसे अपने साथ दूसरे कमरे में लिवा गईं। वहाँ एक युवती सिर के बाल खोले बैठी भजन गा रही थी—“देखो जी एक बाला जोगी द्वारे मेरे आयो री।” युवती मगन थी। संगीत उसे सुख दे रहा था। वह वीणा वादन और गायन में रत थी। उमा जाकर एक ओर बैठ गई और प्रौढ़ा मोती बाई गायिका के पास सटकर जा बैठी। तार बजते रहे। वे सुनती रही और गायिका धीरे-धीरे झूमती रही। उसका गीत नहीं रुका। सबेरा खुलकर हो गया था। सूरज की सुनहली किरणें दरवाजे पर अपना बन्दनवार बाँध रही थी। बाई जी ने गायिका के कन्धे पर हाथ रखा और धीरे से थपथपाकर बोली—“बस ! रागिनी बस ! प्रभात हो गया। सूरज निकल आया अब वीणा को विश्राम दो। देखो, तुम्हारे घर कौन आया है ?”

साज बन्द हो गया, गीत मौन हो गया और गायिका रागिनी देखने लगी आँखें फाड़-फाड़ कर उमा को। उसे उस पर दया नहीं क्रोध आ रहा था और ताज्जुब हो रहा था कि वह मोती बाई के जाल में फँस कैसे गई। उसे भी बहकाकर लाया गया है, तभी खुश है।

और उमा, वह सोच रही थी कि उसे एक सहेली मिल गई। वह उसके साथ रहेगी, वह भी वीणा बजाना सीखेगी और संगीत की दुनिया में खोकर अपना दुख भूल जायेगी।

सुनहला सपना देखने में बहुत अच्छा लगता है। कल्पना करते समय आदमी अपने तक को भूल जाता है और कामना तो इतनी बड़ी होती है कि उसमें भूत वर्तमान से मनुष्य का कोई सम्बन्ध ही नहीं रह जाता। सिकन्दर ने सोचा था कि मैं विश्व-विजय कर लूंगा। ऐसे ही दशरथ ने कामना की थी कि वे रामचन्द्र का राज तिलक करेंगे। प्रत्येक राजा और हर सम्राट यही चाहता है कि उसके राज्य में और उसकी गद्दी पर उसके ही वंशजों के दिये जलते रहे। गोताखोर जब गहरे समुद्र में मोती खोजने के लिये गोता लगाता है तो वह कभी नहीं सोचता कि धोखा भी हो सकता है और वह समुद्र के गर्भ में समा सकता है। आदमी अनजान होता है अपने भविष्य में; लेकिन फिर भी वह अपने सिर पर रंगीन चादर ओढ़े रहने की कोशिश करता रहता है। यह मानवीय दुर्बलता है। इसीलिए मनुष्य, मनुष्य ही रह जाता है। वह भगवान नहीं बन पाता; क्योंकि वह स्वयं अपने भाग्य का भी मालिक नहीं होता। उमा ने जो सोचा था वह न होकर उसी रात को दृश्य बदल गया और वह सब कुछ जान गई। उसने देखा कि बीच के हिस्से में जो बड़ा सा हाल है उसमें चाँदनी बिछ रहा है; उस पर कालीन और गलीचे भी बिछे हुए हैं। एक कतार में साजिन्दे बैठे हैं। तबला ठनक रहा है, हारमोनियम के स्वर मिलाये जा रहे हैं और वही रागिनी जो सबेरे प्रभाती गा रही थी गोटे का लँहगा पहने पैरों में घुंघुरू बांधे छमछम नाच रही है। प्रोढ़ा जो उस घर की मालिकन थी वह भी बड़िया साड़ी पहने बैठी सामने पानदान रखे पान लगा रही है। सितार वादक अलग तार झनझना रहा है और गलीचों पर बैठे हैं पाँच-सात व्यक्ति। उनमें युवा अधिक, शेष अधेड़ और प्रोढ़ हैं। रागिनी नाच रही है, वे लोग बाह-बाह कर रहे हैं। वे उस पर खुश हो रुपये निछावर कर रहे हैं और पान लगाने वाली महिला रुपये समेटती जाती है। वह मुस्कराती जाती है और लोगों का शुक्रिया अदा करती है।

सहमी सकुची और ठगी सी बैठी थी उमा एक कमरे में। उसकी खिड़की से यह सब कुछ देख रही थी। उसके मन में एक प्रश्न उठा—तो क्या

यह वेश्या का कोठा है ? जगदीश मुझे कहाँ ले आया ? वह तो कहता था कि यह संगीत शिक्षाकेन्द्र है। कहाँ आ गई मैं ? यह तो घोर नरक है। यहाँ की जिन्दगी सड़ांध से भरी है। चलूँ चुपके से यहाँ से, भाग जाऊँ, यही एक रास्ता है।

यह सोच उमा उठकर खड़ी हुई और कमरे से बाहर जाने के लिये जैसे ही उस ओर मुड़ी कि उसने देखा किवाड़ें ओड़के हैं। पास जा, जब वह उन्हें खोलने लगी तो पाया कि कुंडी बाहर से बन्द है। उसने किवाड़ भड़भड़ाये और जोर से चिल्लाई—“खोलो ? मुझे बन्द किसने कर दिया है ? मैं बाहर जाऊँगी।”

उत्तर में बाहर से एक भद्दी हंसी सुनाई पड़ी जो एक युवती की थी। वह कह रही थी—“यहाँ तुम्हें तुम्हारी किस्मत ने बन्द किया है। कुंडी बन्द होती तो मैं खोल देती। इसमें झूल रहा है ताला और उसकी चाभी मोतीबाई के पास है। कैसे आ गई बहन ? यह घर शरीफों का नहीं, तवायफ का कोठा है। बस। समझलो कि जिन्दगी भर आजाद नहीं हो सकती। यहाँ आना आसान है और जाना बहुत मुश्किल।”

उमा ने सुना तो उसकी रूह काँप गई। वह जल्दी-जल्दी किवाड़ों पर हाथ पटकने और चिल्लाने लगी। शोरगुल बढ़ा। महफिल में बाधा पहुँची। लोग चौकने लगे तो बाई जी ने हँस कर टाल दिया कि नई चिड़िया है अभी तो फड़फड़ायेगी ही। गजब की खूबसूरती रखती है। उस पर तो बड़े-बड़े कुरबान हो जायेंगे। आखे नहीं उसकी, शराब भरे कटोरे है। आदमी उनमें डूब जायेगा।

महफिल फिर जम गई। साज बजने लगा। गीत चलने लगा और घुंघुराओं की छमछम से सारा हॉल गूँज उठा। इतने में उमा आई खिड़की के पास और उसके सीखचे पकड़ जोर से चिल्ला उठी—“बन्द करो यह नाच गाना। मैं नहीं जानती थी कि यह वेश्या का कोठा है, कभी नहीं आती। मुझे बन्द क्यों कर रखा है। ताला खोलो। मैं अभी जाऊँगी यहां से, इसी समय।”

मोतीबाई को गुस्सा आ गया। वे बोलीं झुम्मन उस्ताद से जो तबला बजा रहे थे—“जाइये ! इसको ऊपर के कमरे में बन्द कर आइये। यहाँ ऊधम मचायेगी, परेशान करेगी।”

उस्ताद अकेले ही नहीं गये। उनके साथ सितार-वादक मटरू और हारमोनियम मास्टर कादिर भी गये। कमरे का ताला खोला गया। उमा के मुँह पर कपड़ा डाल बाँध दिया गया और फिर बनाली गई उसकी गठरी। वह उसी कमरे में पहुँचा दी गई जिसमें सबेरे आकर बैठी थी।

नीचे तबला फिर ठनकने लगा और घुघुरू बजने लगे। कमरे के किवाड़ बाहर से बन्द थे। उमा अन्दर बैठी थी। वह रो रही थी अपने भाग्य पर कि न जाने कौन सी मनहूस घड़ी में मेरा जन्म हुआ जो दुख पर दुख झेलती जा रही हूँ और उनका अन्त नहीं होता। अब समझी कि जगदीश नहीं उसका नाम शेखर है। उसने मेरे साथ खिलवाड़ किया है। पहले बनिये के हाथ बेचा, फिर ला पटका यहाँ। स्त्री कितनी जल्दी विश्वास कर लेती है पुरुष का और उसके बदले में उसे मिलता है उससे धोखा। तभी तो कहा जाता है कि पुरुष निर्वाह नहीं कर पाता और स्त्री जिन्दगी भर उसे निभा ले जाती है।

उमा की आँखें जल रही थी। उसका हृदय तेजी से धड़क रहा था। वह सोच रही थी कि देखो अब क्या गति होती है। मेरा भगवान ही मुझसे रूठा है तो दुनिया क्या करेगी। वह तो सतायेगी ही। आज की दुनिया उन्हें सुख देती है जो झूठे हैं, मक्कार हैं और हैं दगाबाज। दुख उन्हें मिलता है जो सच्चाई करते हैं और सच्चाई पर चलते हैं। यह कालयुग है और मैं बैठी हूँ ऐसे नगाड़खाने में जिसमें तूती की आवाज पहुँच ही नहीं सकती। यहाँ मुझसे फायदा उठाया जायेगा। बाई जी रकम ऐँठेंगी। मनचले लोग अपना मन बहलायेंगे। मुझे नाचना होगा, गाना पड़ेगा और दूसरों की बुझानी पड़ेगी प्यास; क्योंकि मैं जवान हूँ और औरत हूँ। इसीलिये वेश्या गृह में लाई गई हूँ। अब समझी कि स्त्री वेश्या अपने मन से नहीं बनती। इस मार्ग पर उसे समाज ही लाता है। मैं अगर समाज में एक अपवाद न

होती, विधवा न होती तो शेखर क्यों बनता सी० आई० डी० इन्स्पेक्टर और क्यों लाता मुझे तख्तनऊ; फिर मेरा सतीत्व नष्ट करता। मुझे माँ बनने के दर्जे पर पहुँचाना और बेचना बनिये के हाथ। काश ! दुनिया में किसी की मौत आई हो और मैं मर जाऊँ तो इस रोरव से छूट जाऊँ।

आधी रात हो गई। उमा विचारों में डूबी बैठी रही। पूरी रात गुजर गई और उसके कमरे के किवाड़ नहीं खोले गये।

+ + +

सवेरे जब कमरे के किवाड़ खुले तो उमा बाहर की ओर भागी। तब उसे पकड़ा झुम्मन उस्ताद ने और कलाई मरोड़ कर कहने लगा—“कैसी भागी जैसे हिरणी हो। चल, नीचे चल। पहले कुछ खा पी ले फिर नाचने का अभ्यास कर। नाचना जानती है या नहीं ?”

उमा झुम्मन से लिपट गई और उसे एक हाथ से पीटने तथा दाँतों से काटने लगी। झुम्मन वहाँ अकेला नहीं था। मटरू और कादिर भी उस पर पिल पड़े। वह नीचे नहीं गई वही अड़ी रही। तब उसे पीटा गया और फिर कमरे में बन्द कर दिया गया। दोपहर को उसे खाना नहीं दिया गया और जब साँझ हुई तो बाई जी उसके पास आई। उनके पीछे थी एक युवती जिसके हाथों में भोजन की थाली थी और दूसरी युवती लेकर आ रही थी एक बड़िया सी साड़ी तथा ब्लाउज।

बाई जी ने धीरे से उमा को समझाया और कहा—“अभी तुम इस घर को बुरा समझती हो और हम लोगों को अपना दुश्मन; लेकिन जब यहाँ का राग-रंग समझ जाओगी तो खुद ही पाओगी तुम्हारे सामने बड़े-बड़े अमीर और उमराव आकर झुकेंगे। लो खाना खाओ, गुस्सा न करो। उसके बाद कपड़े बदल लो। यकीन रखो मैं अभी तुम्हें महफिल में नहीं बैठाऊँगी। पहले नाचने गाने का अभ्यास कर लो। फिर जब तुम्हारी शिक्षक दूर हो जाये तो महफिल में जाना। तब समझ में आयेगा कि यह दुनिया कितनी रंगीन है।”

“भाड़ में जाये तुम्हारी दुनिया और तुम। मैं तो तुम्हें एक भली स्त्री

समझती थी और तुम निकली दिष की गाँठ । फेव दो खाना और ले जाओ अपने कपड़े । मैं भूखी रहूँगी और कोशिश करूँगी कि इसी तरह मेरे प्राण निकल जायें ।”

उमा की यह बात सुन मोतीबाई ने क्रोध नहीं किया । वे हँसकर उसे पुनः समझाने लगी—“देखो, गुस्सा न करो उमा । मुझे बुरा मत समझो । बुरा है तुम्हारा वह समाज जिसने तुम्हें जगह नहीं दी । तुम्हें भटकना पड़ा । शेखर जैसा जालिम आदमी तुम्हारे साथ खूब खुलकर खेला । अब अगर तुम कही जाती हो तो समूरे और मेँके दोनों जगह के दरवाजे तुम्हारे लिये बन्द होंगे । वहाँ तुम दुतकारी जाओगी और यहाँ तुम्हारी इज्जत होगी । वहाँ जो लोग तुम्हें आवाँरा और बदचलन कहेंगे, यहाँ वे ही आकर आदाब बजायेंगे । दुनिया के दोनों रूप तुम्हारे सामने हैं । मैं तो यही कहूँगी कि अगर तुम्हें समाज से बदला लेना है तो मेरी बात मानो और भूल जाओ मानमर्यादा को । वह कोरा ढोंग है । खाओगी नहीं तो क्या भूखी रहोगी ? आदमी कही भी हो किसी भी परिस्थिति में हो उसे अन्न से बैर नहीं करना चाहिये । तुम नहीं खाओगी तो मैं तुम्हें खिलाती हूँ अपने हाथों ।”

यह कह मोतीबाई उमा को अपने हाथ से खाना खिलाने के लिये उद्यत हुई । थाली सामने रखी थी । पूड़ी का एक कौर तोड़ उसको रबड़ी में सान उन्होंने नेवाला उसकी और बढ़ाया तो वह उठकर खड़ी हो गई । उसने हाथ झटक दिया मोती बाई का और थाली में इतने जोर में लात मारी कि वह झनझना कर दूर जा गिरी, सब खाना फँल गया । फिर उसने कपड़े भी लेकर मलगीज डाले और तीर की तरह बाहर भागी; लेकिन दरवाजे पर चार हाथों ने उसे रोक लिया । ये हाथ उस्ताद झुम्मन और मटरू के थे । जब उसने बदतमीजी की और जोर से बड़बड़ाई तो वहाँ खड़े कादिर ने उसके मुँह पर जोर का एक तमाचा दिया । वह विलंबित हुई । कुछ देर के लिये उसकी आँखों के सामने अंधेरा सा छा गया ।

मोती बाई तंग आ गई। उमा उनके काबू में नहीं आ रही थी। धीरे-धीरे एक सप्ताह बीत गया। उमा कभी खाती, कभी भूखी प्यासी ही पड़ रहती। उसको यातना मिलती। वह मारी पीटी जाती, लेकिन इसका उस पर कुछ भी असर नहीं होता। मोती बाई ने एक दिन शेखर को बुलवाया। वह एक होटल में मिल गया और कादिर उसे लिवा लाया। तब मोती बाई ने उसके सिर पर यह जिम्मेदारी डाल दी कि या तो उमा को रास्ते पर लाये, वह नाचे गाये तो मेरे पैसे और उनका ब्याज वसूल हो और अगर ऐसा नहीं होता है, तुम भी नाकामयाब रहते हो तो मेरे दो हजार वापस कर दो।

शेखर ने हँसकर बाई जी को जबाब दिया। वह बोला—“जो काम तुम लोगों के लिये बहुत मुश्किल है, वह मेरे लिये आसान है। कल ही लो उमा से जैसा कहोगी वैसा करेगी। लेकिन सोच लो बाई जी, मेरी मेहनत का क्या दोगी; क्योंकि तुम तो कह ही चुकी हो कि अगर मैं भी उमा को नाचने गाने के लिये राजी नहीं कर सका तो तुम मुझसे वह कीमत वापस ले लोगी जो उमा के बदले दी थी। और अगर मैं ऐसा जादू कर दूँ कि वह तुम्हारे इशारों पर नाचे और तुम्हारे मन की होकर रहे तो क्या दोगी मुझे? बोलो मन्ज़ूर है? रुपये पाँच सौ लूँगा।”

“पाँच सौ! बहुत बड़ी रकम है, शेखर। मैं इतना नहीं दे सकती। सौ-पचास की बात करो। बस इससे ज्यादा मेरे पास गुन्जायश नहीं है।”

बाई जी के मुँह से यह बात सुनकर शेखर उठकर खड़ा हो गया और जाने का आयोजन कर जल्दी-जल्दी कहने लगा—“सोच लो। मैंने तुम्हारे फायदे की बात कही थी। न जाने कितने पाँच सौ कमाओगी उमा से। वैसे मैं राजी हूँ, रुपये ले लो और कल ही सबेरे मेरे साथ उमा को भेज दो।”

बाई जी ने शेखर को जाने नहीं दिया। वे उसे रोक कुछ सोचती हुई धीरे से हँसकर बोली—“तुम मुझे बहुत तंग करते हो, शेखर। मैं वेइया हूँ।

लोग मुझे दौलत देते हैं और तुम ऐसे हो जो देना तो दूर रहा उल्टा मुझसे ले जाते हो। अच्छा ! तुम काम बनाओ। मैं तुम्हें दो सौ दे दूँगी।”

“नहीं बाई जी ! ये तो पाँच सौ के आधे भी नहीं हैं। समझ गया तुम्हें काम नहीं करवाना है। तो फिर जैसी तुम्हारी मर्जी मैं चलता हूँ।” यह कहकर शेखर पुनः चल दिया।

तब बाई जी ने उसके पीछे कादिर को दौड़ाया। वह उसे मनाकर वहाँ खीच लाया। बाई जी उसे सामने देख फिर हँस पड़ी और कहने लगी—“अच्छा तुम्हारी ही बात रही, मैं पाँच सौ दूँगी। आज ही अपना मन्त्र फूँको उमा पर कि उसके सिर पर से भूत उतर जाये। वह नाचना गाना सीखकर मेरे कोठे की शान बने। जाओ, फिर देर न करो ?”

शेखर चला गया। वह उमा के कमरे में पहुँचा। उसे देखते ही उमा उस पर सहिनी सी टूट पड़ी। वह दोनों हाथों से उसकी छाती पीटने लगी और दाँत पीसकर बोली—“चले जाओ यहाँ से, बहुत ही नीच हो तुम। मैं तुम्हारा मुँह भी नहीं देखना चाहती। मुझे यहाँ लाकर फँसा दिया। अब मैं तुम्हारे साथ नहीं जाऊँगी। मैं जानती हूँ कि तुम मुझे लेने ही आये हो। मैंने सोच लिया है कि इसी कोठे पर जान दे दूँगी।”

शेखर ने उमा को सम्भाला। उसे क्रोध नहीं आया। वह मुस्कराकर बोला—“उमा, तुम जब जब मुझे गलत समझ लेती हो तब तब तुम्हारी ऐसी ही हालत हो जाती है। मैं तुम्हें लेने नहीं, तुमसे कुछ कहने और एक भेद की बात बताने आया हूँ। तुम्हारी लड़की मिल गई। उसका पता चल गया।”

उमा को विश्वास नहीं हुआ; लेकिन फिर भी उसका गुस्सा ठंडा पड़ गया। वह बोली अलग हटकर—“कौन जाने कि तुम सच कहते हो या झूठ। तुमने हर बार मुझे धोखा दिया है। हाँ, कहाँ है मेरी लाड़ली ! क्या मैं उसे देख सकती हूँ !”

“देखना तो दूर रहा उमा, तुम उसे गोद में भी खिला सकती हो।”

शेखर की यह बात सुन उमा को परतीति हो गई। वह बोली उत्सुक

होकर—“तो लाओ, कहाँ है मेरी बच्ची। मेरी गोद में दे दो। कितने दिन हो गये मुझसे विछड़े।”

शेखर ने जब देखा कि उमा पर उसका रँग जम गया है तो वह गम्भीर हो गया और गरुये स्वर में बोला—“लेकिन एक शर्त है, उमा। यह कोई नहीं जानने पाये कि उस लड़की की माँ तुम हो। इससे तुम्हारा अहित ही होगा, हित नहीं।”

उमा सहज ही राजी हो गई और शेखर हाथ पकड़ कर उसको ले आया बाई जी के कमरे में और बोला—“देखो ! यही है तुम्हारी लड़की। इसको बदमाशों ने चुराकर इन्ही मोती बाई के हाथ बेच दिया। अब यह उनकी निज की पुत्री के नाम से पुकारी जाती है।”

बाई जी उस समय कमरे में नहीं थीं। पलंग पर लड़की सो रही थी। उमा ने सोते में ही उसका मुँह चूम लिया और बोली—“तो फिर यही रहूँगी, नाचूँगी, गाऊँगी। दोनों ही शिक्षा लूँगी; लेकिन बाई जी से कह दो कि मैं पेशा नहीं करूँगी। यह मेरे वश की बात नहीं है। हाँ ! एक बात और है यह भी मैं चाहूँगी कि लड़की मेरे कमरे में रहे या मैं बाई जी के कमरे में रहकर उसकी देखभाल करूँ। मैं जी लूँगी, मुझे जीने का सहारा मिल गया।”

फिर शेखर और उमा दोनों लौट गये अपने कमरे में। उमा उससे कहने लगी—“तो तुम जाओ, मैं बाई जी का कहना करूँगी। हाँ पेशे वाली बात तो उनसे कहते जाओ।”

शेखर जाने की अपेक्षा पलंग पर बैठ गया। और बोला—“मैं इसके लिये बाई जी से कह दूँगा वे मान जायेंगी और तुम्हें फिर चेतावनी दिये जाता हूँ कि जब तुम्हारा विश्वास बाई जी को पूरा-पूरा हो जाये तो अपनी लड़की को लेकर यहाँ से चल देना, नहीं तो उसकी जिन्दगी बरवाद हो जायेगी। मैं तो खानाबदोश हूँ ही। तुम एक माँ के नाते उसका ध्यान रखना यह मेरी सलाह है।”

उमा ने कुछ भी जबाब नहीं दिया। उसका मीन इस बात का प्रतीक था कि वह शेखर की बातों से सहमत है। थोड़ी देर शेखर वहाँ बैठा और

फिर चल दिया। उमा उसको जाते हुए देख मन ही मन अपने प्रति अपमान और ग्लानि से भर उठी कि यह मेरा पति है जो मुझे वेश्या के कोठे पर छोड़ कर जा रहा है।

+ + + +

शेखर मोती बाई से पाँच सौ की रकम लेकर चला गया। उमा के लिये जैसा वह बता गया था, वैसा ही बाई जी ने किया। उन्होंने उमा को अपने कमरे में बुला लिया और लड़की के लालन-पालन का भार उसे सौंप दिया। बाई जी ने उमा को बतलाया कि यह लड़की उनकी अकेली संतान है। उसके पालन पोषण में कोई त्रुटि न रहे, इसीलिये मैंने कोई आया नहीं रखी। अपने हाथों ही उसका सब काम करती हूँ। तुम नेक और भली औरत मालूम होती हो। जैसा शेखर मुझसे कह गया है मैं वैसा ही करूँगी। तुमसे पेशा नहीं करवाऊँगी।

उमा बाई जी से बहुत प्रसन्न हो गई और दूसरे दिन से ही वह कादिर, उस्ताद जुम्मन, झुम्मन और मटरू के साथ बैठ गाने का अभ्यास करने तथा नाचना सीखने लगी। बाई जी उसकी प्रगति से बहुत खुश थीं। वे उसकी हर बात का ध्यान रखतीं और धीरे-धीरे जब दो तीन महीने बीत गये तो उस पर से सभी तरह के प्रतिबन्ध हटा दिये गये। वह स्वतंत्र रूप से वहाँ रहने लगी। नाम उसका यहाँ बदल नहीं पाया जैसा कि वह चाहती थी। शहर के लोग जानने लगे कि मोती बाई के कोठे पर जो उमा नाम की नई नर्तकी आई है उसका मुजरा सुनने बड़े बड़े लोग जाते हैं। सुना है वह बहुत अच्छा गाती है और बहुत अच्छा नाचती है।

दिन पर दिन बीतने लगे, उमा की शोहरत बढ़ने लगी। जब वह इस घर में आई थी तो उसकी लड़की की आयु लगभग छः महीने की थी। अब पैरों चलती पूरे दो साल की हो गई थी। उमा घृणित संगति में रहकर भी घृणित जीवन व्यतीत नहीं कर रही थी। उसका गला सुरीला था, वाणी में लोच था। उसके पैर इतने सघे और इतने हल्के पड़ते थे कि जिस समय वह

बैठकर घूमती तो दाहिनी एड़ी ठनकाकर एक-एक घुँघरू क्रमशः बजाती। बाई जी के यहाँ और भी युवतियाँ थीं। कोई-कोई तो नाचना गाना जानती ही नहीं थी। वेश्या वृत्ति ही उनकी एकमात्र वृत्ति थी। जो नाचती गातीं जैसे रागिनी, वे उसमें पारंगत न हो अधूरी थी। पैसे की आग में उन्हें भी जलना पड़ता। ये तन का सौदा करतीं। इस तरह बाई जी के यहाँ उनकी गुजर होती। लेकिन उमा, वह खूब चमक रही थी। बाई जी के कोठे पर रोज साँझ समय मुजरा होना शुरू हो जाता और रात को दस-ग्यारह बजे तक होता रहता। उमा पर नोटों की वर्षा होती। एक-एक दिन में पाँच-पाँच सौ सात-सात सौ की रकम बाई जी के हाथ में आती। जब कि दूसरी युवतियों के मुजरे में इससे पहले सौ-पचास रुपये से ज्यादा कभी नहीं आये। इस तरह उमा मोती बाई के लिये पारस बटिया हो रही थी। वे उसे अन्याधिक स्नेह करने लगी। लड़की का नाम रखा गया था शोभा। उसको जब उमा गले से लगाती चूमती चाटती तो बाई जी देखकर निहाल हो जाती। वे उमा पर बलि-बलि जाती।

उमा यह सोचती थी मन में कि जब शोभा बड़ी होगी तो उसका क्या होगा ? जैसा शेखर कह गया है कि बाई जी का विश्वास मुझ पर जम जाये तो मैं शोभा को लेकर यहाँ से चली जाऊँ। ऐसा करना मेरी समझ में नहीं आता। मुझे यकीन है कि मैं जो कुछ बाई जी से कहूँगी वे उसे जरूर करेगी। जब शोभा बड़ी होगी तो मैं उसे ऊँची से ऊँची शिक्षा दिलवाऊँगी और फिर व्याह करूँगी उसका किसी ऐसे साहसी समाज सेवकी युवक से जो वेश्या पुत्री समझकर भी उसे सहर्ष स्वीकार करे। वह घर-जमाई बन जायेगा। बाई जी और मैं उन दोनों के साथ किसी नये घर में जाकर रहूँगी। यह कोठा छोड़ दिया जायेगा। उस समय इसकी जरूरत नहीं रह जायेगी।

उमा को बड़ा संतोष था। उसे एक बात की खुशी और थी कि उसके बाद फिर न शेखर आया और न उससे मिला।

×

×

×

एक दिन शेखर आया, करीब डेढ़ पीने दो साल बाद। वह बाई जी से मिला। उनसे रुपये की माँग की कि मुझे सिर्फ तीन सौ रुपये चाहिये। एक

सख्त जरूरत आ गई है। बाई जी मुकर गईं। वे बोलीं "इस समय तो कुछ भी नहीं है, शेखर। अपना काम कहीं और से चला लो। मैं मजबूर हूँ।"

तब शेखर ने भी आंखें बदली और लापरवाही के साथ मोती बाई से कहने लगा—“हाँ मजबूरी का ही नाम शुक्रिया हुआ करता है, बाई जी। रुपये शेखर को मिल जायेंगे। हाँ सीधी राह पर न चल उसे टेढ़ी राह चलना पड़ेगा। तुम शोभा की माँ हो यह सब जानते हैं। और मैं जानता हूँ कि तुम उसकी माँ न होकर एक संरक्षिका हो। उसकी माँ को जो बड़े-बड़े आँसुओं से रोती है मैं लाकर खड़ा कर दूँगा। वह फेंक देगी तुम्हारे पाँच हजार रुपये और अपनी लड़की ले जायगी। बोलो क्या कहती हो। या तो मेरा काम बनाओ या फिर मैं पैसे उधर से लूँ। मेरी जरूरत रुक रही है, काम तो चलाना ही पड़ेगा।”

बाई जी शेखर का मुँह देखने लगी। वे अफसोस के साथ बोलीं—“तुम से यही उम्मीद की जा सकती है, शेखर। तुम ऐसे आदमी हो कि मुर्दे का कफन तक उतार सकते हो। तीन सौ तो नहीं, मेरे पास पचास रुपये हैं चाहो तो ले जाओ।”

“नहीं! बाई जी नहीं। पचास नहीं चाहिये, रखो उन्हें। तुम नहीं दोगी, उमा तो है मैं उस पर अपना जादू चलाता हूँ। अब तो बड़े नाम हैं उसके। उससे अच्छी डान्सर इस शहर में दूसरी नहीं। कोई जरूरी नहीं कि वह अब आपके पास ही रहे। वह अलग भी रह सकती है। मैं फेंक दूँगा तुम्हारे दो हजार रुपये और उसको ले जाऊँगा। वह मेरी अमानत है। रुपये मिल जाने के बाद तुम्हारा उस पर फिर कोई हक नहीं रह जायेगा। ब्याज के बदले न जाने कितना वसूल कर चुकी हो। मैं जाता हूँ उसी के पास।”

यह कहकर शेखर वहाँ से उठ उमा के पास जाने लगा तो बाई जी ने उसे रोका और बुलाकर तीन सौ रुपये दिये। फिर जब वह चला तो उससे दृढ़ता के साथ बोली—“ये रुपये मुझे वापस नहीं चाहिये, तुम ले जाओ; लेकिन बार-बार न आना, शेखर। मैं नहीं पसन्द करती कि तुम मेरे यहाँ आओ। मुन्हें पैसा ही पैसा दिखलाई देता है। आदमी की कीमत तो तुम्हारी नजरों में कुछ है ही नहीं। मैं तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ। मुझ पर दया रखना।”

शेखर ने कुछ भी जबाब नहीं दिया। वह हँसता हुआ चला गया।

और चार पाँच दिन बाद जिस समय मुजरा हो रहा था शेखर पुनः बाई जी के कोठे पर पहुँचा। वहाँ उसने देखा कि उमा नाच रही है। साज बज रहा है। घुँघरू छम छमा रहे हैं और रागिनी चल रही है—‘किसी से प्रीति न करियो कोय। प्रीति जगत् का सुन्दर धोखा, प्रीति किये दुख होय।’

शेखर बैठ गया महफिल में, वह भी मुजरा सुनने लगा। और जब देखा बाई जी ने उसको तो वे एकदम सूख गईं। उनका चेहरा सफेद पड़ गया। शेखर उनकी ओर देख मुस्करा उठा, जिससे वे जल-भुन गईं।

ऐसे ही देखा उमा ने भी शेखर को। उसका गीत रुक गया, पाँव जहाँ के तहाँ रह गये। वह सोचने लगी कि यह बला कहाँ से आ टपकी। कुछ भी हो शेखर का यहाँ आना जरूर कोई मतलब रखता है। दो एक क्षण मौन रहने के बाद वह फिर नाचने लगी और आगे की कड़ी उसके मुँह से निकली—“प्रीति पतंग करे दीपक से, अपना आप जलाय। रीझे-रीझे सुध-बुध भूले, मौत के हाथ बिकाय। किसी से……।”

अब देखा शेखर ने सेठ गणेश प्रसाद को। वे भी बैठे नाच देख रहे थे। उसने धीरे से हाथ उठा उनका आदाब बजाया। सेठ जी ने भी उसकी शक्ल देखी तो वे भी सूखकर रह गये।

मुजरा चलता रहा। शेखर बैठा रहा और सेठ जी जब चले तो जब से कुछ नोट निकालकर निछावर कर दिये उमा पर। शेखर ने यह देखा तो हँस दिया। उमा मुजरा समाप्त कर जब अपने कमरे में जा कपड़े बदलने लगी तो वह उसके पीछे जा खड़ा हुआ और हँस कर बोला—“मुझे पहचाना, हुजूर। मैं आपका गुलाम शेखर हूँ।”

उमा ने घूमकर उसकी ओर देखा और धीरे से पूछने लगी—“शायद मुजरा सुनने आये होंगे उमाबाई का। देख लिया? तबियत भर गई? मैं नर्तकी बन गई, जो कभी तुम्हारी जोरू थी। कैसे आये? कहाँ रहे इतने दिन?”

“तुम तो कह ही चुकी हो कि मैं मुजरा सुनने आया था। ठीक है। कोठे पर आते ही तुम्हारे अन्दर की उमा मर गई और वेश्या बोलने लगी।

मैं तो जानता था कि तुम सिर्फ नाचती-गाती ही हो; लेकिन अब जाना कि तुम्हें पेशे से भी लगाव हो गया है और तुम पेशा करती हो। तुम.....।”

अभी शेखर इतना ही कह पाया था कि उमा सिंहनी सी गरज उठी—‘किसने कहा तुमसे कि मैं पेशा करती हूँ, मैं वेश्या बन गई हूँ। तुम नीच हो इसलिये तुम्हें ओछी ही बातें सूझती हैं। चले जाओ यहां से और फिर कभी आने की हिम्मत न करना। अब उमा कमजोर नहीं, उसमें ताकत आ गई है।”

“शाबास उमा शाबास। अच्छा, तो मैं यह कहने आया हूँ कि मैं बाई जी को बतलाता हूँ कि शोभा की माँ तुम हो और उसको चुपके से लेकर भाग जाने की तुम्हारी योजना है।”

यह सुनते ही उमा व्यंग्यात्मक हँसी, हँसी और छूटते ही कहने लगी—‘कहकर देख लो। बाई जी को बतला दो। उमा अब किसी से नहीं डरती। उसे अपने ऊपर भरोसा है। पहले की बात और थी। मुझसे तुम खेल खेलते रहे, काठ की गुड़िया की तरह नचाते रहे; मगर अब कुछ नहीं कर सकते तुम मेरा, कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते।”

अब शेखर ने अपनी नीति बदल दी। वह समझ गया कि उमा उसके नियन्त्रण से बाहर जा चुकी है। वह हँस पड़ा और अपनत्व भरी वाणी में बोला—“अरे तुम तो नाराज हो गईं। मैंने हँसी की थी। अच्छा ! बताओ कि मैं इतने दिन नहीं आया तुमने कभी मुझे याद किया।”

“याद किया जाता है उनको जो कुछ होते हैं और जिनकी याद किसी की जिन्दगी का सहारा बन जाती है। मैंने कभी नहीं याद किया तुमको। हमेशा भूलने की कोशिश ही करती रही और अब भी यही चाहती हूँ कि तुम मेरी जिन्दगी में न आओ। तुम्हारी दुनिया अलग और मेरी अलग। मैं न खुश हूँ और न नाराज।”

उमा यह सब एक साँस में ही कह गई। शेखर सुनता रहा। उसने तर्क नहीं किया, देर तक बैठा रहा और उससे मीठी-मीठी बातें करता रहा। वह उबलती रही, बिगड़ती रही और बीच-बीच खामोशी भी अख्तियार करती रही।

जब शेखर चला गया तो उमा गहरे सोच में पड़ गई। उसका मन कह रहा था कि शेखर का आना कुछ मतलब रखता है। मुझे उससे दूर ही रहना चाहिये; क्योंकि जब उसके मन में कोई स्वार्थ समाता है तभी वह अपना नाटक खेलना शुरू कर देता है। इस बार मैंने तय कर लिया है कि अगर उसने मुझसे खेलने की कोशिश की तो मैं उसके फरेब में न आ उससे ही खेल जाऊँगी, खुद मिट जाऊँगी और मिटा दूँगी उसे भी।

जब बाई जी ने उमा से पूछा कि शेखर आया था, तुमसे क्या कहता था तो उमा हँस कर बोल उठी—“सब कुछ जान कर भी आप पूछती हैं। वह जो कुछ कह गया है और कहता है वह सब क्या होता है यह आप को अच्छी तरह मालूम है।”

बाई जी हँस पड़ीं और उमा के निकट आ उसके सिर पर स्नेह भरा हाथ फेरती हुई बोलीं—“कहीं नजर न लग जाये, उमा रानी। अब तुम बहुत समझदार हो गई हो।”

यह कह कर बाई जी ने दूसरे हाथ से उमा की ठुड़ी ऊपर उठाई और उसका मुँह चूम लिया। उमा उनके वक्ष से लग गई और दोनों खिलखिलाकर हँस पड़ीं।

३६

शेखर अब नित्य नहीं दूसरे तीसरे दिन उमा के पास अवश्य आता और मिलता बाई जी से भी। वह उन्हें पैसे के लिये तंग नहीं करता।

उमा शेखर को आया देख फौरन ही किसी न किसी काम में लग जाती। अपने को ऐसा व्यस्त बना लेती कि शेखर की जगह यदि कोई दूसरा

हो तो वह उसकी गतिविधि को देख कर चकित रह जाये और वापस चला जाये। जब वश नहीं चलता तो वह शेखर की सब सुन लेती, अपनी कुछ भी नहीं कहती। इसके अतिरिक्त एक बात और थी। शेखर उसे स्पर्श करना चाहता था नारी की तरह। वह उसके सम्मुख जीता जागता प्रमाण रखता कि कभी तुम मेरी पत्नी थी। लेकिन उमा उममे दूर भागती, वह कहती कि नहीं अब तुममे मुझे कोई मतलब नहीं है। मैं गायिका हूँ, नर्तकी हूँ; मगर वेश्या नहीं और तुम्हारी पत्नी भी नहीं। हमारा तुम्हारा रिश्ता टूट चुका है और टूटे हुए काँच के टुकड़े फिर जोड़े नहीं जा सकते, उनमे दरार पड़ जाती है।

शेखर असफल रहा हर बार। उमा ने उसे अपने बदन से उँगली नहीं छुआने दी। अब उमे पक्का विश्वास हो गया कि उमा चरित्र की सच्ची है। उसने अपने को पतित नहीं किया। उसमें निखार आ गया है। वह कसौटी पर कस गई है और एकदम खरा सोना है। उसने सोच लिया कि अब वह उसे नाराज करके उसमें कुछ नहीं पा सकता। जो भी पायेगा वह खुशामद से, क्योंकि अब वह बुराई और भलाई को अच्छी तरह पहचान गई है।

इस तरह उमा देखने लगी कि दिन प्रतिदिन शेखर में परिवर्तन आता जा रहा है। वह जब आता है तो उसमें शोखी और शरारत नहीं होती। उसके चेहरे पर गाम्भीर्य छाया रहता है। वह कुछ-कुछ उदास सा रहता है। किन्तु कभी नहीं पूछा उसने कि तुम कैसे हो? बाई जी अक्सर उसे टोक बेती कि क्या बात है शेखर इधर कुछ तुम सुस्त नजर आ रहे हो। तब वह सूखी हँसी हँसकर जवाब देता कि कुछ नहीं बाई जी! शरीर है, कभी अलसा जाता है। कभी घन्टे रोजगार और पैसे की बातें दिमाग में घूमने लगती हैं। मेरा मन इस शहर से ऊब गया है, जी चाहता है कि कहीं और चला जाऊँ।

शेखर जब उमा के प्रति सोचता तो वह हैरान हो जाता। वह पाता कि वह अनायास ही खिंचता चला जा रहा है उसकी ओर। उसके जीवन में एक नही अनेक नारियाँ आईं; लेकिन कोई भी उसके लिये याद नहीं बनी। और एक थी उमा जिसके लिये उसका अन्तःकरण पुकार-पुकार कर कह रहा था कि उमा को अंगीकर करो; शेखर वह तुम्हारी पत्नी है। उसमें त्याग था, उसने अपना सब कुछ समर्पण कर दिया तुम्हें और तुम्हारे

विश्वास पर पलने लगी। तुमने धोखा दिया। उसे अपने स्वार्थ के दाँव पर लगा दिया। अब वह तुमसे दूर हो गई। उसे प्राप्त करना चाहते हो तो तुम भी त्याग करो। वह तुम्हारी हो जाएगी। तुम प्रयत्न करो, कोशिश कभी बेकार नहीं जाती है।

शेखर बहुत उद्विग्न था। वह हमेशा इसी उधेड़-बुन में रहता कि कहाँ जाऊँ। लखनऊ अब मेरे रहने की जगह नहीं रही। यहाँ वह पेड़ फल-फूल रहा है जिसकी मैंने जड़ें काट दी थीं और उन पर तेजाब छिड़क दिया था। उमा अमर बेल बन गई और मैं रह गया अपने गुनाहों के साथ ही। मैं दूर हो जाऊँगा तभी काम बनेगा। इससे पहले इच्छा होती है कि एक बार कानपुर हो आऊँ सागर और कान्ता के पास। कुछ दिन मन बहल जायेगा। फिर वहीं मैं अपने भविष्य की योजना निश्चित करूँगा।

शेखर ने कानपुर जाने का निश्चय कर लिया। वह जा रहा था स्टेशन की ओर तभी उसके रिक्शे के सामने से सेठ गणेशप्रसाद की कार निकली। कार रुकी और जाते हुए रिक्शे को ड्राइवर ने आवाज देकर रोका। शेखर आया तो सेठजी ने उसे कार में बैठा लिया और बतलाने लगे कि कल रात को सात बजे मेरे यहाँ प्रीति भोज है। लड़के की वर्ष गाँठ है न। और एक बात जो बहुत ही खास है वह यह कि उमाबाई का नाच होगा। दावत में जरूर आना, शेखर। चलो! कहाँ चल रहे हो? मैं अमीनाबाद जा रहा हूँ वहाँ से चले जाना।

शेखर सेठजी से कहता तो चाहता था कि मैं कानपुर जा रहा हूँ; लेकिन कह नहीं सका। उसने एक क्षण में ही सोच डाला कि अच्छा है, उमा का नाच होगा। मैं भी देख लूँगा। फिर कभी नहीं आऊँगा, यह मेरा प्रण है। वह बोला “कहीं नहीं, योही स्टेशन तक जा रहा था। चलिये अमीनाबाद ही चलना हूँ। आप बुलायें और मैं न आऊँ यह कैसे हो सकता है, जरूर आऊँगा सेठ जी। मेरे लायक जो काम हो बतलाइये मैं तैयार हूँ।”

सेठजी हँस दिये। कार चल पड़ी और शेखर, वह हो गया मौन। उसकी आँखों के सामने उमा की तसवीर नाचने लगी।

×

×

×

सेठ गणेशप्रसाद के दरवाजे पर आज प्रातः से ही नौबत बज रही थी। सांझ होते-होते लाउड स्पीकर अपना राग अलापने लगा। और अभ्यागतों का आना आरम्भ हो गया। बड़ी अच्छी व्यवस्था थी। सड़क पर दूर तक दोनों तरफ कनाते लगी थी। कदम-कदम की दूरी पर दूबिया बिजली के हंडों का प्रकाश हो रहा था। कुर्सियाँ बिछ रही थी, मेजें लग रही थीं। उन पर खाद्य पदार्थों से भरी डिशें रखी थी, जिन पर सफेद कपड़ा ढक रहा था। लोग आते, कुर्सियों पर बैठ जाते। वर्षगांठ की रस्म पूरी होने जा रही थी। उसके बाद भोज का आयोजन था। फिर अगला प्रोग्राम था उमा के नृत्य का। लोग आशा लगाये बैठे थे कि जल्दी से वह घड़ी आये और उमा-बाई का नाच शुरू हो।

सेठजी के यहाँ आया था गोपाल भी। आज कल उसका मित्र सागर भी लखनऊ आया हुआ था। पिछली बार वह लौट गया था निराश होकर। शेखर का पता कहीं नहीं लग पाया। अब वह फिर आया था प्रयास करने और यह तय करके कि वह अपने शेखर दादा को ढूँढकर ही रहेगा। सेठजी के यहाँ निमन्त्रण में गोपाल उसे अपने साथ लिवा लाया। वह बैठा था और उसके ठीक दस बीस व्यक्तियों के पीछे शेखर भी बैठा था। इस समय उसका चेहरा गमगीन था।

सात बजे बन्दूक छूटी, गोले दगे और वजने लगा बँण्ड मोहक स्वरों में। लड़के से केक पर जल रही मोमवत्ती बुझवा दी गई। फिर केक का एक टुकड़ा काटकर उसे खाने को दिया गया। सब लोगों ने तोहफे दिये। लड़के के सामने खिलौनें, मिठाइयों कपड़ों और छोटे-मोटे गहनों का ढेर लग गया। सेठजी फूले नहीं समा रहे थे। वे लड़के को गोद में उठा एक और बैठी उमा के पास जा पहुँचे। उमा ने बच्चे को गोद में ले लिया। वह उसका मुँह चूमने लगी।

दावत चलने लगी लोग डिशें खाली करने लगे। बँण्ड बन्द हो चुका था; और वे सब लोग भी अब जलपान कर रहे थे। रात हँस रही थी। महफिल जम रही थी। दावत चल रही थी। लेकिन शेखर के सामने की प्लेटें, ज्यों की त्यों रखी थी। उसने मिठाई की एक डली भी मुँह में नहीं

डाली, न पी चाय और न खाया नमकीन ही। जब दावत समाप्त होने पर आगई तो सेठजी उसके पास आये और आग्रह करके उन्होंने उसे खिलाया। सहमा उसने देखा कि उसकी वगल में ही थोड़ी दूर पर बैठी है उमा। उसकी गोद में सेठजी का लड़का है। तब शेखर के आँसू आ गये और वह मन ही मन कहने लगा कि बाद मुद्दत के माँ का लाल उसकी गोद में आया है। कैसा संयोग है। उमा अपने कलेजे के टुकड़े को अंक में भरे बैठी है। वह नहीं जानती कि यह उसकी ही संतान है। मैं तो जा ही रहा हूँ जाते-जाते क्यों न उसके साथ भलाई करता जाऊँ। जिस तरह उसे मालूम हो गया है कि शोभा उसकी लड़की है, उसी तरह उसे यह भी बता दूँ कि यह सेठजी का पुत्र नहीं, उमा, तुम्हारा ही लड़का है। कितनी खुश हो जायेगी वह, कितना संतोष हो जायेगा उसे, कह नहीं सकता।

शेखर धीरे से वहाँ से उठा और उमा के पास पहुँचा। उसने जाकर बच्चे को अपनी गोद में ले लिया और फिर दुख मिश्रित हँसी हँसकर बोला—“उमा ! एक बात बतादूँ कान में, सुन लो। यह भी जान लो कि मैं आज ही रात को यहाँ से चला जाऊँगा और फिर कभी नहीं आऊँगा। मैंने तुम्हें बहुत सताया, बहुत दुख दिया। न जाने कितने पाप किये हैं मैंने। उनका प्रायश्चित्त नहीं करूँगा उमा तो कुत्तो की मौत मरूँगा। सुनो।”

उमा शेखर का मुह देखने लगी। उसने कुछ भी जवाब नहीं दिया और शेखर उसने कान के पास मुह ले जाकर धीरे-धीरे कहने लगा—“उमा, यह तुम्हारा ही लड़का है। इसे मैंने ही बेच दिया था सेठजी के हाथ। कुसूरवार मैं हूँ। मुझे माफ कर दो और बच्चे का भविष्य बनने दो। किसी पर भी यह भेद प्रकट न हो कि इसकी माँ तुम हो। मैंने सोचा कि मैं तो जा ही रहा हूँ। क्यों न माँ बेटे का मिलन करा दूँ।”

उमा चौक गई। वह कुछ कहने ही जा रही थी कि शेखर ने जल्दी से लड़के को उसकी गोद में दे दिया और फिर अपनी जगह पर आकर बैठ गया।

उमा में नया जीवन आ गया। शेखर के जाने का उसको तनिक भी दुख नहीं हुआ। उसे हर्ष हुआ इतना कि वह मन में फूली न समाई। वह

बच्चे को बार-बार वक्ष से लगा लेती और उसके चुम्बनों पर चुम्बन लेती। दावत समाप्त होते ही उसका नृत्य शुरू हो गया। लड़का बैठा दिया गया सेठ जी के पास बगल की कुर्सी पर। उमा गाने लगी मगन होकर एक पुरानी फिल्म पुनर्मिलन का गीत—“नाचो नाचो प्यारे मन के मोर, आज मेरे जीवन में छाया अषाढ़। आज मैं हूँ मगन, मेरा तन मन मगन, सारा जीवन है आनन्द-विभोर। नाचो नाचो...”

झुम्मन उस्ताद तबले पर थाप दे रहे थे। कादिर और मटरू सितार तथा हारमोनियम के स्वर वुलन्द कर रहे थे। उमा के पैरों में घुघरू बँधे थे। वह छम-छम करती नाच रही थी। देखने वाले वाह-वाह करते। और शेखर, उसे ग्लानि हो रही थी स्वयं अपने थाप पर कि उमा उसकी पत्नी है। वह नाच रही है महफिल में, उसके नाम के आगे अब दो अक्षर और जुड़ गये हैं। लोग उसे उमा बाई कहते हैं। कितना नीच, कितना पतित और कितना हेय हूँ मैं जो घर बसाकर उजाड़ दिया। जहाँ बसंत था वहाँ पतझड़ ले आया। ईश्वर मुझे मेरे गुनाहों के लिये कभी क्षमा नहीं करेगा।

और सागर देख रहा था नर्तकी को। उसे उसका चेहरा कुछ-कुछ जाना-पहचाना सा लग रहा था। वह सोच नहीं पा रहा था कि उसने उसे कहाँ देखा है। थोड़ी देर बाद उसे ख्याल आया कि ऐसा ही चेहरा था उस उमा का जिसको उसके ससुर आदि लोग जबरदस्ती अपने साथ लिवाये जा रहे थे। इसका नाम है उमा बाई। गोपाल कहता है कि यह शहर की प्रसिद्ध नर्तकी है। इसका मुजरा सुनने बड़े-बड़े रईस आते हैं।

इस तरह सागर देखता रहा उमा को और वह थिरक-थिरक कर नाचती रही। मजलिस का रंग खूब जम रहा था। लोग मुग्ध हो रहे थे उमा बाई के नृत्य पर। और सागर, वह कुछ खोज रहा था उसकी छबि में। उसके मन में यह प्रश्न चक्कर काट रहा था कि उस दुखियारी का नाम था उमा और इस नाचने वाली का नाम है उमाबाई। दोनों के चेहरों में समानता है, ऐसा क्यों?

दो गीत गाकर उमा ने थोड़ा सा विश्राम लिया। लोगों में चख-चख मचने लगी। वे सब जोर देने लगे। तब सेठजी ने सबको शान्त किया। वे बोले—“अभी नाचेंगी उमाबाई और देर तक नाचेंगी। आप लोग खामोश रहिये। यह मेरी सबसे करबद्ध प्रार्थना है।”

उमा इस बार जब नाचने के लिये उठी तो उसने फिर गीत गाया हँसी-खुशी का जिससे लोग झूमने लगे और महफिल में रँगत आ गई। वह गाती रही, नाचती रही और बीच-बीच में कभी-कभी गोद में उठा लेती रही अपने लाल को। सेठ और सेठानी को उसका यह व्यापार बहुत अच्छा लगता, वे निहाल हो जाते। उमा इतनी अधिक मगन थी, इतनी बेसुध कि वह अपने नाचने गाने में सब कुछ भूल गई थी। नई धुन छेड़ती, राग को खूब अलापती और मोहनी डाल देती श्रोताओं पर।

गोपाल ने सागर का कन्धा हिलाया और धीरे से कहा—“देखा सागर। वाकई उमाबाई गजब का नाचती है। देखो उसके पैर कितने हल्के पड़ते हैं बदन कंसा सधा है और गले में तो जादू है। तुम आ नहीं रहे थे, इसीलिये मैं तुम्हें जबरदस्ती लाया था।”

सागर ने जबाब नहीं दिया। उसने हाँ द्योतक सिर हिला दिया। वह फिर गौर से देखने लगा उमा के मुख को। उसे लगने लगा कि शायद यह वही उमा है, जिसकी रक्षा करने में मैंने मार खाई थी। हो सकता है कि परिस्थितियों वश वह नर्तकी बन गई हो और नाचने गाने का पेशा कर लिया हो।

उमा का नाच ऐसा जमा कि लोग देखते रह गये। लाउड स्पीकर बन्द कर दिया गया था। उमा राग चल रहा था। उसकी रागिनी जादू भरी थी। वह गा रही थी हाव-भाव जताकर और सेठजी के यहाँ आये हुये अभ्यागत अपने तन-बदन की सुध-बुध भूल रहे थे। सहसा हवा का वेग कुछ तेज हुआ और फिर देखते ही देखते आंधी आ गई, तूफान हहर-हहर करने लगा। लोग उठ-उठ कर भागने लगे। सबकी आँखों में धूल भर गई। जैसे काल-

रात्रि आ गई हो। अँधेरा ऐसा हो रहा था। बिजली के बल्ब और हण्डे सब बुझ गये। दौड़ भाग में लोगों की टक्कर से कई हण्डे फूट गये। ऐसे ही रगड़ गये बिजली के तार आपस में। जहाँ कनातें लगी थी और बड़ा सा शामियाना लग रहा था, वहाँ आग लग गई अब जोर का कोहराम मच गया। कोई भी वहाँ नहीं रहा, सभी भाग खड़े हुए।

आँधी इतने जोर से चल रही थी कि कानों के पर्दे फटे जा रहे थे। उमके साथ तिनके और धूल उड़ती, जिससे आँखें मिच-मिच जाती। उनमें मिट्टी और कण भर जाते।

उमा फँस गई थी आग की लपटों के बीच। हवा का सहयोग पाकर आग प्रचंड हो रही थी। सब को अपनी-अपनी पड़ी थी। दूसरा कैसा है और कहाँ है इसका किसी को भी होश नहीं था। लेकिन शेखर को तलाश थी उमा की कि वह कहाँ गई। सेठ जी के घर में है या कोटे पर पहुँच गई। वह इधर-उधर भाग रहा था और पुकार रहा था—“उमा ! उमा !”

उधर सेठ जी सेठानी से पूछ रहे थे और सेठानी जी उनसे कि वच्चा कहाँ है, जल्दी में कोई उसे उठाकर नहीं लाया। मालूम होता है कि वह बाहर ही रह गया। दम्पति घबड़ाकर बाहर भागे। तब तक मकान में भी आग लग चुकी थी।

सागर और गोपाल भी वहाँ से भागे। दोनों एक दूसरे का हाथ पकड़े थे। आग खूब प्रचंड हो रही थी। आँधी विकराल रूप धारण कर रही थी। वह मचल रही थी तूफान की तरह जो प्रलय जैसा फूटकार करता है।

अंधेरे की जगह उजाले ने ले ली। सेठ जी का घर जल रहा था खूब ऊँची-ऊँची लपटों में। सब लोग बाहर निकल आये थे। हवा के झोंके भाग को बल दे रहे थे। वे तेजी के साथ चलते और लपटे लहरा लहराकर रह जातीं। उमा घबड़ा गई बुरी तरह। वह वहाँ से निकलने की हर चन्द कोशिश करने लगी। तभी उसने देखा कि उसका लाड़ला एक ओर खड़ा रो रहा है, वह सहम गया है। उसने उसे जल्दी से गोद में उठा लिया। फिर तनिक भी परवाह नहीं की लपटों की। वह उसको लेकर भागी और बात की बात में भाग से बाहर निकल आई।

ऐसे में देख लिया उमा को शेखर ने। वह उसके पीछे दौड़ा और जोर-जोर से पुकारने लगा—“उमा ! ठहरो ! कहां जाती हो ? मेरी बात तो सुनो। मैं.....।”

लेकिन उमा कुछ भी नहीं सुन रही थी। वह भाग रही थी बेतहाशा। शेखर अभी कुछ ही कदम उसके पीछे दौड़ा था कि उसे देख लिया सागर ने। उसने उसकी बांह पकड़ ली और फिर अपनी ओर खींचता हुआ बोला—“कहाँ जा रहे हो, शेखर दादा ?”

शेखर ने घूमकर जो सागर का चेहरा देखा तो अवाक् रह गया। फिर उसने पाया कि उसके साथ ही गोपाल भी खड़ा है। तब वह असमन्जस में पड़ गया। उमा दूर निकल गई अंधेरे में, फिर दीख नहीं पड़ी। गोपाल तथा सागर दोनों उसे अपनी ओर खींचने लगे। वे कहने लगे कि घर चलो, शेखर दादा ! हम लोग न जाने कितने दिनों से तुम्हें ढूँढ़ रहे हैं।

किन्तु शेखर निरुत्तर था। उसके पास इन दोनों की बातों का कुछ भी जवाब नहीं था। वह कुछ दूर चला दोनों के साथ फिर आगे जाकर बोला—“तुम लोग व्यर्थ ही हैरान हुए। मैं तो कल कानपुर आ ही रहा था। आज सेठ जी के यहाँ दावत थी इसलिये रुक गया। अब इतनी रात को क्या जाऊँ, तुम लोग जाओ। मैं सबेरे आ जाऊँगा। फिर सागर, तुम्हारे साथ ही कानपुर चलूँगा।”

लेकिन सागर नहीं माना। वह बोला—“नही दादा, नहीं। मैं आपकी बात कभी नहीं मानूँगा। एक लम्बे अरसे के बाद मिले हो। अब पहले जैसी गलती नहीं करूँगा।”

गोपाल ने भी मित्र का ही समर्थन किया। तब शेखर विवश हो गया और उसे जाना पड़ा उन दोनों के साथ। रास्ते में वह सोचता जा रहा था कि उमा लड़के को लेकर कहाँ गई होगी। क्या उसे भी अपने कोठे पर ले जायेगी। मैंने उसे मना किया था कि बच्चे का भविष्य बनने दो। वह सेठ जी के यहाँ रह कर एक दिन बड़ा आदमी बनेगा। लेकिन माँ की ममता नहीं मानी। वह उसे लेकर भाग ही खड़ी हुई। यह नहीं सोचा कि सेठ जी कोठे पर जायेगे और उससे लड़का ले आयेगे। कही ऐसा तो नहीं कि वह अपने कोठे पर न जा कही और चली गई हो।

इस तरह शेखर मन ही मन गुनता हुआ चला जा रहा था सागर और गोपाल के साथ। आँधी अब भी चल रही थी। रात भयानक लग रही थी। और दूर दूर चुका था सेठ जी का जलता हुआ मकान। गोपाल ने कहा कि कोई सवारी मिलती तो कर ली जाती; लेकिन ऐसे तूफान में उसका मिलना बिल्कुल असम्भव था। तीनों आगे बढ़ रहे थे और हवा के तेज झोंके उन्हें पीछे ढकेल रहे थे। फिर भी वे चल रहे थे। सागर और गोपाल बहुत खुश थे। वे बीच-बीच में शेखर से बातें करने लगते; लेकिन वह प्रायः मौन ही रहता। उसकी गति भंग हो रही थी और उसे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। वह निरुद्देश्य सा उन लोगों के साथ चला जा रहा था।

उमा लड़के को गोद में लिये भाग रही थी। कुछ दूर तक वह तेजी से दौड़ी, फिर थकने लगी, उसकी साँस फूलने लगी। लड़का भी डर गया था बुरी तरह। पहले तो वह रोता रहा, फिर भयभीत हो गया इतना कि उसकी गोद से चिपट गया और डरी आँखों से उसे देखने लगा। लेकिन अँधेरे में उसे उमा का चेहरा नहीं सूझ रहा था। वह यही समझ रहा था कि मौत उसको लेकर भाग रही है और अभी खा जायेगी।

उमा जब बहुत थक गई तो वह धीरे-धीरे चलने लगी। इतने में ही उग्र हो गई प्रकृति। आँधी और तूफान का जोर तो था ही। अब बरसने लगा मूसलाधार पानी। आँवाझोर आँधी चल रही थी। हवा का हर झोंका इतना बलवान हो गया था कि वह चलते हुए राही के ऐसी झपट मारता कि वह एक बार तो पीछे घूम ही जाता, उसकी तेजी बर्दाश्त नहीं कर पाता। पानी का यह हाल था जैसे आकाश से एक साथ ही हजारों, लाखों की तादात में झरने फूट पड़े हों। उमा से पैर नहीं उठाये उठते, फिर भी वह आगे बढ़ती चली जा रही थी। उसे न रास्ते का ज्ञान था और न अपनी मंजिल का। वह चल जा रही थी; क्योंकि अपना लाल पा गई थी।

आँधी की हहराहट दसो दिशाओं में आतंक भर रही थी और ऐसे में ही भयानक काले बादलों के बीच बिजली चमककर जब कड़कड़ाने लगती तो कलेजा दहल जाता। ऐसा लगने लगता कि वह अभी गिर पड़ेगी। पानी की बूँदें असह्य हो रही थी; लगता कोई हवाई बन्दूक से छरें छोड़ रहा है। उमा को आगे कुछ भी दिखाई नहीं देता। मगर फिर भी वह गिरती-पड़ती चल रही थी। अचानक सड़क के किनारे खड़े एक पेड़ से वह टकरा गई। उसका माथा फट गया। वह चीख मारकर गिर पड़ी और गिरते ही बेहोश हो गई।

लड़का उस अँधेरे में खड़ा रोता रहा। आँधी पानी की गति में

तनिक भी अन्तर नहीं पड़ा। ऐसा लगता था कि आज कालरात्रि है, प्रलय की सी आँधी चल रही है। तहलका मचा रखा था भयंकर तूफान ने।

४३

शेखर, सागर और गोपाल तीनों अभी रास्ते में ही थे कि तेजी के साथ पानी बरसने लगा। न जाने कैसे गिरते-पड़ने वे घर पहुँचे। गोपाल की माँ और उसके पिता शेखर को देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उसका हाल चाल पूछा। फिर यह सलाह देने लगे कि वह अब इधर-उधर न भटके, सागर के साथ कानपुर जाये और अपने घर में रहे। बाबू श्यामलाल के पास किस चीज की कमी है जो वह इधर-उधर मारा-मारा फिरता है।

इसके बाद यद्यपि शेखर की इच्छा नहीं थी, लेकिन फिर भी उसे गोपाल तथा सागर के साथ बैठकर भोजन करना पड़ा। फिर वह लेटा जाकर दूसरी मजिल के उस बड़े कमरे में जिसमें गोपाल रहता था। तीन पलंग बिछाये गये। शेखर का बीच में था और सागर तथा गोपाल के अगल-बगल। तीनों में बातें होती रही। धीरे-धीरे गोपाल सो गया। शेखर जागता रहा। वह अब भी सोच रहा था उमा और उसके लड़के के बारे में कि वह कहाँ गई होगी और उसका क्या हुआ होगा।

शेखर आँखें मूँदे लेटा सोने का बहाना कर रहा था, जिससे सागर भी सो जाये। लेकिन सागर के मन में यह डर था कि ऐसा भी हो सकता है कि मैं सो जाऊँ और शेखर दादा चुपके से उठकर कहीं चले जायें। वह

जागता रहा। कमरे की बत्ता रात भर जलती रही। दोनों ही भाई पलकें बन्द किये लेटे थे। एक अशान्त था और दूसरा स्थिर। रात बीत रही थी। आँधी और पानी का जोर भी अब धीमा पड़ गया था।

पो फटी। पानी बन्द हो गया। हवा धीरे-धीरे चल रही थी। उसमें थोड़ी-थोड़ी ठंड समा रही थी। गोपाल उठा, उसने खिड़की से बाहर झाँककर देखा। आसमान साफ था, उस पर कहीं भी बादल का एक टुकड़ा तक नजर नहीं आता। फिर उसने निगाह दौड़ाई नीचे सड़क पर। नीम के पेड़ के नीचे एक स्त्री पड़ी थी। उसके माथे पर खून जम रहा था। वह सो रही थी या मर गई थी इसका बोध नहीं होता। उसकी छाती पर सिर रखे एक लड़का भी पड़ा था। वह भी सो रहा था। गोपाल देखता रहा। सफेदी और साफ होने लगी। सबेरा खुलकर हो गया, वह तब तक खड़ा ही रहा खिड़की पर और उसकी निगाह नीचे की ओर झुकी रही।

अब उजाले में गोपाल ने देखा कि वह स्त्री बढ़िया साड़ी पहने है जो कीचड़ में लथपथ हो गई है। और लड़का भी धारण किये है कीमती लिवास। उसके कपड़े भी मिट्टी में सन रहे हैं। उसकी जिज्ञासा बढ़ने लगी और उत्सुकता ने उसे इस बात के लिए विवश कर दिया कि आखिर वह जा पहुँचा नीचे और उन दोनों के पास खड़े हो गौर से देखने लगा। देर बाद वह पहचान पाया कि अरे ! यह लड़का तो सेठ गणेश प्रसाद का है। यह यहाँ कैसे आया ? और यह औरत तो उमाबाई है। यही तो कल नाच रही थी महिफल में। वह जल्दी से ऊपर गया और अपने साथ सागर को लिवा लाया। दोनों ने उमा को उठाया और अपने घर ले गये।

लड़के और उमा को नीचे के कमरे में एक तख्त पर लिटाया गया। थोड़ी देर बाद जब उमा की आँखें खुलीं तो अपने को इस नई जगह में पा वह एकदम चौंक उठी। वह उठकर बैठ गई और पास खड़े सागर तथा गोपाल को विस्मय विस्फारित नेत्रों से देखने लगी। उसने पूछा --“आप लोग कौन हैं ? मैं यहाँ कैसे आई ? मैं तो गिर पड़ी थी, मेरे चोट लग गई थी। यहाँ मुझे कौन लाया ?”

इस पर गोपाल ने आश्वागन भरे स्वर में उत्तर दिया—“आप घबड़ाइये नहीं, उमाबाई । यहाँ आपको मैं लाया हूँ । आप सड़क पर पड़ी थीं और यह सेठ जी का लड़का आप के पास कैसे आ गया ?”

उमा गोपाल को अब और भी अधिक चौकती निगाहों से देखने लगी । उसने कुछ भी जवाब नहीं दिया और उठकर खड़ी हो गई । फिर जाने का आयोजन कर उसने जैसे ही लड़के को गोद में उठाया तो सागर ने उसकी राह रोक ली । वह बोला— ‘आपकी यह हालत कैसे हुई ? आप कोठे से सड़क पर कैसे आ गई ? ये सब बातें मुझे आश्चर्य में डाल रही हैं । चलिए, हम लोग आपको पहुँचाये देते हैं ।’

उमा इस बात के लिये राजी नहीं हुई । उसने सागर के प्रश्नों का उत्तर भी नहीं दिया । और सागर, वह पहचान गया कि यह वही उमा है जिसकी रक्षा करने में एक बार मैंने मार खाई थी । वह उससे कुछ और पूछना चाहता था कि तब तक शेखर आता दिखलाई दिया । उसे देखते ही उमा एकदम जोर में चिल्ला पड़ी—“तुम क्यों आ गये ? मैं तुम्हारे साथ नहीं जाऊँगी । मेरा लाल मुझे मिल गया । मैं घरती के किसी भी कोने में जा सिर छिपा लूँगी । तुमसे मेरा कोई नाता नहीं । तुम छलिया हो । तुम्हारा कोई विश्वास नहीं ।”

शेखर पहले तो चौक गया कि उमा यहाँ कैसे आ गई, फिर जब गोपाल ने बतलाया कि वह उसे सड़क पर में उठाकर लाया है तो वह हँसा और बोला—“उमा, मैं स्वयं जा रहा हूँ । तुमने अपनी जिन्दगी में यह नया मोड़ क्यों लिया ? तुम लड़के को लेकर कहाँ जा रही थी ? सेठ जी क्या कहेंगे ? बाई जी मेरे पीछे पड़ेंगी कि उमा कहाँ गई । और शोभा तुमको कितना याद करेगी । बोलो ।”

सागर और गोपाल इन दोनों की ओर चकित नेत्रों से देख रहे थे । उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि ये लोग एक दूसरे को कैसे जानते हैं । शेखर की बात सुन उमा कहने लगी, “शोभा, बाई जी के पास है । वह लड़की जाति है उसको लेकर मैं कहाँ-कहाँ भटकूँगी । ऐसे में उसकी भी यही गति

हो सकती है जो तुमने मेरी की है। लड़का मेरी जिन्दगी का दिया है। यह चिराग जहाँ रोशन होगा वहाँ तुम्हारी छाया भी नहीं पड़ने दूँगी। क्योंकि तुम बाप नहीं इसके दुश्मन हो और इसी तरह मेरे पति न होकर जल्लाद हो। मुझे तुमसे डर लगता है, मुझसे दूर रहो।”

सागर अपने कौतूहल को रोक नहीं सका। वह शेखर से व्यस्त स्वर में पूछने लगा—“उमाबाई और आपकी पत्नी, सेठ जी का लड़का और आप उसके पिता हैं। और यह शोभा कौन है, दादा ? यह सब क्या है ? मैं क्या सुन रहा हूँ ? उमाबाई क्या कह रही हैं ?”

“उमा का कहना ठीक है, सागर। मैंने उसे सताया। फिर अपने पतिधर्म का निर्वाह नहीं कर पाया। यह मेरी कमजोरी थी। यह लड़का उमा का ही है। इसको मैंने सेठ जी के हाथ बेच दिया था। और शोभा है उमा की लड़की। वह भी बाई जी के कोठे पर मेरे ही द्वारा पहुँची थी। अब मैं जा रहा हूँ। मैं कुसूरबार हूँ। मैंने उमा की जिन्दगी से नाटक खेला, उसके लिये मैं बहुत शर्मिन्दा हूँ। उसका प्रायश्चित्त करने जा रहा हूँ, फिर नहीं लौटूँगा।” यह कहकर उत्तेजित शेखर वहाँ से चल दिया।

सागर शेखर के पीछे भागा। उमा कमरे में ही रह गई और लपका गोपाल भी मित्र के साथ। शेखर जैसे ही आँगन में आया वैसे ही गोपाल के पिता ने उसकी बांह पकड़ ली। वे बोले—“कहाँ जाते हो, शेखर ? यह स्त्री कौन है ? मैं जान गया। मैंने तुम्हारी सब बातें सुन ली है। भागो नहीं, जो परिस्थितियाँ सामने आगई है उनका डटकर मुकाबला करो। यहाँ आओ मेरे साथ।”

शेखर विस्फासित हो गया। वह गोपाल के बाप के साथ पीछे लौट पड़ा। इतने में ही कमरे से बाहर जा रही उमा को गोपाल की माँ ने रोक लिया। वे बोली—“तुम मेरे शेखर की बहू हो। मैं तुम्हें कहीं नहीं जाने दूँगी।”

अब सागर मुस्करा पड़ा और हँसने लगा गोपाल भी। दोनों के सामने अनोखे दम्पति खड़े थे। उनके चेहरों पर भावावेश था और दोनों ही इस कोशिश में थे कि तनिक भी मीका मिले और वे यहाँ से चले जायें।

सब लोग कमरे में आ गये। गोपाल के पिता और सागर कोच पर बैठ गये। तख्त पर बैठी थी गोपाल की माँ, उनके पास उमा खड़ी रही, वह बैठी नहीं। और गोपाल भी वहाँ खड़ा रहा। उसने बैठने की जरूरत ही नहीं समझी; क्योंकि शेखर उसके निकट ही कुर्सी पर बैठा था और वह इस प्रयत्न में था कि जल्दी से जल्दी मैं यहाँ से चला जाऊँ। वह जानता था कि जब लोग पूछेंगे और उमा अपनी कहानी बतलायेगी तो क्या कहेंगे गोपाल के माँ बाप। यों ही लोग मुझे अच्छी निगाह से नहीं देखते हैं और उस पर मेरे काले कारनामे तो उन्हें और भी अधिक चौंका देंगे। ऐसी स्थिति हो जाएगी कि कोई भी भला आदमी मुझे अपने घर में नहीं घुसने देगा।

गोपाल शेखर के चेहरे के बदलते भाव देख रहा था। इसीलिए वह पूर्णतया सतर्क था कि जैसे ही शेखर जाने को उद्यन होगा मैं उसका हाथ पकड़ लूँगा। उसकी माँ ने पूछा और उमा रो-रोकर बतलाने लगी अपनी कथा कि वह किस घर की बेटी थी और किस घर में ब्याही गई। कैसे विधवा हुई, और फिर कैसी-कैसी यातनायें मिली समुराल मे। उसके बाद शेखर सी० आई० डी० इन्स्पेक्टर कैसे बना। उसने उसकी जिन्दगी के सफेद पदों को काला किया, दो बच्चों का बाप बना और उन्हें गुप्त रूप से बेच दिया। उसकी भी विक्री की, एक बार नहीं दो बार। वह कोठे पर गई। पेशे से दूर नाचने और गाने में नाम कमाया। अब वह इस स्थिति में आगई है कि न तो कोठे पर जायेगी और न रहेगी शेखर के ही साथ। वह अपने लड़के को लेकर कहीं दूर चली जाएगी।

गोपाल के पिता ने उमा की कहानी सुनी और पत्नी के कुछ बोलने से पहले ही वे शेखर की ओर उन्मुख हुए। उससे पूछा कि उमा का कथन कहाँ तक सत्य है। यदि ऐसा है कि तुम उसकी जिन्दगी से खेले। तुमने उसे बरबाद किया तो वह कैसी भी हो तुम्हें उसको पत्नी स्वरूप स्वीकार करना पड़ेगा।

शेखर, जिसकी सफेद झूठ बोलने की आदत थी, यहाँ पर मिथ्या भाषण नहीं कर सका। उसने कहा—“उमा अक्षरशः सत्य कहती है। मैं उसे स्वीकार करने के लिये तैयार हूँ। लेकिन उसे अब मुझ पर विश्वास नहीं रह गया है। इसलिये मैं उसको उसके हाल पर छोड़ना हूँ और अपनी मन्जिल तय करता हूँ, जिस पर चलकर फिर मुझे यहाँ वापस आना न पड़े।”

“ऐसा नहीं शेखर ! हम लोग तुम्हें कही नहीं जाने देंगे। बहू को साथ लेकर बाबू श्यामलाल के पास चलो। मैं भी चलूँगा। सागर का भी ब्याह तय है। सिर्फ तुम्हारी ही वजह से रुका था। कितना अच्छा हुआ कि बड़ी बहू घर में आ गई। अब छोटी आयेगी। पहले तुम्हारा ब्याह हो जाना जरूरी था।”

गोपाल के बाप ने शेखर से यह कहा तो वह असमजस में पड़ गया, कुछ भी बोल नहीं पाया। नभी सागर फौरन ही बोल उठा—“हाँ शेखर दादा। चाचाजी ठीक कहते हैं।”

“यह तो मैं भी जानता हूँ, सागर। लेकिन...”

“लेकिन क्या ? जो बात हो साफ-साफ कहो। अब तो गुथ्थी मुलझ रही है, फिर उलझन क्यों ?” शेखर की यह बात सुन गोपाल की माँ बीच में बोल पड़ी और पूछा फिर गोपाल ने भी शेखर से कि कानपुर चलने में उसे कोई आपत्ति है ? उमा को अंगीकार करने में उसे कुछ हिचकिचाहट है ?

तब शेखर अपनी बात एक दुखिया की भाँति कहने लगा—“जहाँ बहुमत होता है उस काम को तो करना ही पड़ता है। जैसा लोग कहते हैं, मैं सब कुछ मान लूँ और सभी बातों के लिये तैयार हो जाऊँ। लेकिन आप लोगों ने उमा से भी कुछ पूछा। वह क्या कहती है ?”

इस पर गोपाल की माँ ने उमा के सिर पर स्नेह भरा हाथ रखा और अपनत्व भरे स्वर में पूछने लगी—“हाँ, तुम्हारी क्या राय है बहू ? शेखर अपने किये पर शर्मिन्दा है। वह तुम्हें पत्नी की तरह घर में रखने के लिये तैयार है। जो भूल उससे हुई उसको छोड़ो और मेरी राय मानो। जाओ, उसका घर बसाओ। अभी तुम अकेली ही हो, इसीलिये कमजोर हो। घर गृहस्थी में तुम पाओगी कि तुम्हारी जिन्दगी फूल की तरह मुस्करा उठेगी। और...”

उमा कुछ भी सुनना नहीं चाहती थी और न किसी प्रकार वह सहमत ही थी शेखर के साथ रहने के लिये। लड़का उसके पास से अब सागर की गोद में चला गया था। वह उसे पुचकार रहा था। उसकी ओर देख वह गोपाल की माँ से बोली—“माँ जी, राह बतलाने वाले बहुत मिलते हैं, साथ चलने वाला कोई नहीं। इन्सान ही इन्सान को धोखा देता है तभी आदमी एक दूसरे का विश्वास नहीं करता। मैं नहीं रहूँगी शेखर के साथ। उसे न बच्चों का मोह है और न अपनी मान मर्यादा का ख्याल। जो आदमी पत्नी बनाकर फिर मुझे बेच सकता है, मुझे वेश्या बनने के लिये मजबूर कर सकता है, वह क्या नहीं कर सकता ? मुझे विवश न कीजिये माँ जी, जाने दीजिये। मैं बाज़ आई ऐसी जिन्दगी से जिसमें कदम-कदम पर धोखा, छल फरेब और न जाने क्या-क्या भरा है। आज की दुनिया भले लोगों की जगह नहीं रह गई, उसमें बर्बरता आ गई है। गुण्डे शोहदों का तो नाम बदनाम होता ही है; लेकिन भगवान बचाये इन शरीफ बदमाशों से जो सफेदपाश होते हैं और जिनका दिल काला होता है।”

यह कहने के साथ उमा ने जल्दी से आगे बढ़ सागर की गोद से लड़के को ले लिया और गति में वेग भरकर वहाँ से चल दी।

“ठहरो उमा ! जाने से पहले मेरी एक बात सुनती जाओ। मैं तुम्हारा अधिक समय नहीं लूँगा।” यह कहता हुआ शेखर उसके सामने जा खड़ा हुआ और दुखिया नेत्रों से उसकी ओर देखता हुआ बोला—“अगर मैं अपने को मिटा दूँ तो तुम सुखी हो सकोगी, उमा ? मैं चाहता हूँ कि तुम खुश रहो। तुम्हारे दोनों बच्चे इस दुनिया में आबाद रहे। मैं ही हूँ काले दिलवाला आदमी और शरीफ बदमाश। यदि पिस्तौल होती तो मैं अभी अपने गोली मार लेता। तुम न जाओ उमा, मैं जाता हूँ। मैं कितना अभाग हूँ कि स्वर्ग की दुनियाँ में पहुँच कर भी नर्क में ही बना रहा। मैं योग्य बाप नहीं बन सका उमा और न कुशल पति ही। तुम्हारे शब्दों में मैं आबारा हूँ, सफेद पोश हूँ। मैं……।”

उमा ने देखा शेखर की आँखें भर आई हैं और वह रोने ही वाला है। उसके अन्तःकरण ने कहा कि देखो उमा पत्थर पसीज रहा है। उसके भी दिल

और दिमाग है तभी तो आँखों में आँसू भर आये हैं। वह खड़ी खड़ी एकटक उसकी ओर देखती रही। ऐसे में सहसा शेखर ने उसकी गोद से लड़के को ले लिया। फिर उसे वक्ष से लगा फूट-फूट कर रोता हुआ बोला—“मुझे माफ कर दो, उमा। मैंने तुम्हारे साथ एक नहीं अनेकों अन्याय किये हैं। मैं महान अपराधी हूँ। मुझसे न छीनो इस लाल को। देखो, मेरी भी गोद भर गई है। मैं ला दूँगा शोभा को भी और बसाऊँगा अपनी छोटी सी दुनिया। तुम मेरा विश्वास करो। विश्वास तो ऐसी वस्तु है जो अनुभव की जाती है। अपने आप उसका जन्म होता है। उसका पेड़ लगाया नहीं जाता, स्वयं उग आता है।”

शेखर रोता रहा। उमा खड़ी थी निश्चल प्रस्तर प्रतिमा की भाँति। सब लोग चित्र-लिखे से इन दोनों की ओर देख रहे थे। दृश्य अजीब था, अपने में अनोखा। अबला की आँखों में मशाल जल रही थी और पुरुष जो उसके सम्मुख होता है सशक्त उसकी आँखें प्रायश्चित्त का पानी बहा रही थीं। वह धीर अधीर हो रहा था। उसके भीतर का शैतान कालयुगी घोड़े पर सवार हो दूर-सुदूर चला गया था। उसमें रह गया था इन्सान जो अपनी परिभाषा अपने आप पढ़ रहा था कि दुख और दर्द के बिना जिन्दगी कभी हँसती नहीं, वह रोती रहती है।

“बोलो उमा, बोलो ! तुम मेरा साथ दोगी तो मैं आदमी बन जाऊँगा। मुझे सहारा दो। मेरे पाप अब मुझे बेचैन कर रहे हैं। मेरा दम घुटा जा रहा है। तुम ऐसी ज्योति हो जो मेरी अँधेरी जिन्दगी में उजाला बनकर चमक सकती हो। नहीं जाने दूँगा उमा, मैं तुम्हें कहीं नहीं जाने दूँगा। मैंने तुम्हारी जिन्दगी के साथ जो कुछ खिलवाड़ किया वही मेरे लिये मेरी सबसे बड़ी हार बन गई। तुम जीत गईं उमा और मैं हार गया। और क्या कहूँ, बहुत कह चुका, उमा। अब.....।”

शेखर अभी इतना ही कह पाया था कि न जाने क्यों और कैसे उमा ने लड़के का भी मोह छोड़ दिया। वह घूम कर इतनी तेजी से चल दी कि एक क्षण में ही बाहर की चौखट पर पहुँच गई। तभी दौड़कर सागर ने उसके पाँव पकड़ लिये और रोकर बोला—“भाभी, माफ कर दो मेरे शेखर दादा को।

उन्होंने बड़ी-बड़ी गलतियाँ की हैं और वे कुसूरबार हैं; लेकिन अब दुखी हैं, देखो कैसे रो रहे हैं।”

उमा ने सागर को भली भाँति पहचाना। उसने उसके मुँह को खूब गौरपूर्वक देखा। फिर उसका सिर ऊपर उठा और उसके आँसू अपने आँचल से पोंछती हुई धीरे-धीरे कहने लगी—“आपकी बात मुझे माननी ही पड़ेगी। आप में मुझे श्रद्धा है। आपने मेरी रक्षा की थी। मेरे ससुर से लोहा लिया था जब वे मुझे मैंसे से जबरदस्ती ससुराल लिवाये जा रहे थे। अब रिश्ते में देवर लगते हो तो क्या हुआ; मैं तो आप को अपने से बड़ा ही समझूँगी। मेरा दुर्भाग्य देखो कि मुझ पर दुनिया कभी नहीं पसीजी, हमेशा जुल्म करती रही। मैं उमा से उमाबाई बन गई। मैं……।”

“उमाबाई नहीं! उमा भाभी! अब भूल जाओ भाभी पिछली बातों को। शेखर दादा से हाँ कह दो कि तुम कहीं नहीं जाओगी, उनके साथ रहोगी।” यह कहता हुआ गोपाल उमा और सागर के पास आकर खड़ा हो गया। उमा उसकी ओर देखने लगी। उसकी आँखों में नीर भर आया और वह बड़ी अपने जीवन-देवता की ओर जिसकी गोद में उसका लाड़ला था और जिसकी आँखें दुख का पानी बहा रही थी।

शेखर के पास पहुँच उमा ने लड़के को गोद में ले लिया और फिर नीची दृष्टि कर संकुचित स्वर में कहने लगी—“रोते क्यों हो, जो तुमने कहा वह मैंने मान लिया है। लेकिन दुनिया बसाने से पहले दो बातें सोच लो कि सेठ जी चुप नहीं बैठेंगे। वे लड़का तुमसे ले लेंगे क्योंकि तुमने उसकी कीमत ली है। वे……।”

“तो वह कीमत मैं वापस कर दूँगा उमा ब्याज सहित। इसके अलावा सेठ जी कुछ कहेंगे ही क्यों! उन्हें भी अपनी इज्जत का ख्याल है। यों तो कोई बात नहीं। कह दिया जायेगा कि लड़का गुम हो गया। मगर जब यह भंडा फूटेगा कि सेठ जी ने मुझसे दस हजार का लड़का खरीदा था तो क्या गति होगी उनकी। इसलिये वे रुपये ले लेंगे और मान जायेंगे।”

शेखर की यह बात सुन उमा फौरन हाँ बोल उठी—“और बाई जी

के यहाँ से शोभा को कैसे लाओगे ! वहाँ काम सहज ही नहीं बनेगा, बाई जी को समझाना पड़ेगा ।”

“वह सब मैं कर लूंगा, उमा । तुम इसकी चिन्ता न करो । तुम यही ठहरो । मैं शोभा को लेकर अभी आता हूँ । फिर सागर के साथ हम लोग कानपुर चलेंगे और वही रहेंगे ।” यह कहकर शेखर वहाँ से चल दिया ।

शेखर को जाते देख गोपाल के बाप जोर से चिल्लाये—“कहाँ जाते हो शेखर । अकेले न जाओ, वह वेश्याओं का मुहल्ला है । वहाँ भला आदमी कोई नहीं रहता ।”

लेकिन शेखर चला गया । उसने उनकी बात सुनी ही नहीं । तब वे जल्दी से उठे और ऊपर जा ड़ार से अपनी चेक बुक निकाल लाये । वह गोपाल को दे जल्दी-जल्दी व्यस्त स्वर में कहने लगे—“जल्दी जाओ, गोपाल । देखो, सागर कहाँ गया है ? वह शेखर के पीछे ही गया होगा । बाई जी जितना रुपया माँगे चेक काट देना और झगड़ा न करना । खूब सोच समझकर काम करना ।”

शेखर के पीछे लपक रहा था सागर कि पीछे से गोपाल ने आकर उसका हाथ पकड़ लिया । दोनों साथ-साथ तेजी से आगे बढ़ शेखर के पास पहुँच गये और फिर एक साथ ही बोल उठे—“चलो शेखर दादा, हम लोग बाई जी से शोभा को लेकर ही रहेंगे ।”

शेखर मुस्करा दिया । हँसकर बोला—“जिसके दो-दो जवान भाई साथ हों उसकी दोनों भुजायें हमेशा मजबूत रहती है । मुझे बड़ा नाज है तुम दोनों पर । मैं फूला नहीं समाता कि मेरी दुनिया के दो उजियाले हैं, एक सागर दूसरा गोपाल । एक हीरा और दूसरा मोती ।”

तीनों चले जा रहे थे । उनमें आपस में बातें हो रही थीं, प्रसंग शोभा और बाई जी का था । घर में उमा गोपाल की माँ के पास बैठी सोच रही थी कि देखो क्या होता है—वे (शेखर) गये हैं, कामयाब होकर लौटते हैं या वहाँ झगड़ा-फसाद होता है । रुपया लेकर भी बाई जी मान जायें तो फिर क्या कहना

है। अगर ऐसा नहीं होता है तो फिर बड़ी मुश्किल हो जायेगी। हो सकता है कि मुझे जाना पड़े कोठे पर। मैं समझाऊंगी बाई जी को और मनाकर रहूँगी। वे मेरी बात मानती हैं, मुझ पर विश्वास करती है। मेरे नाच गाने की कमाई से उनका घर भर गया है। उन्हें पैसे की भूख नहीं है। उनके सामने यह भेद खुलेगा कि शोभा की माँ वे नहीं मैं हूँ। अभी कोई नहीं जानता है। चुपचाप अगर शोभा को वे यहाँ चला आने देती है तो बात बन जायेगी कि शोभा को मुझसे अधिक लगाव था इसीलिये बाई जी ने उसे मेरे पास भेज दिया है।

उमा विचारों के भँवर में पड़ी थी। उसको गुमसुम और खोया खोया सा देख गोपाल के बाप अपनी पत्नी से बोले—“जाओ, बहू को ऊपर ले जाओ। इसके कपड़े बदलवाओ और लडके को भी नहला-धुला दो। दोनों का मुँह मीठा कराओ। दोनों हमारे मेहमान हैं।”

गोपाल की माँ हंस पड़ीं और उमा की ओर उन्मुख हो धीरे से बोली—“चलो बहू, ऊपर चलो, ये कपड़े बदल डालो।”

किन्तु उमा अपने स्थान से टस से मस नहीं हुई। वह गम्भीर स्वर में उत्तर देती हुई बोली—“नहीं माँ जी, मैं अभी कुछ भी नहीं करूँगी जब तक वे आ नहीं जायेंगे।”

इस पर गोपाल की माँ पति की ओर देखने लगी। वे भी मौन हो गये। और उमा, वह फिर सोच में पड़ गई कि न जाने क्या हो रहा होगा बाई जी के कोठे पर। देखती हूँ, अगर अधिक देर होगी तो मैं वहाँ स्वयं जाऊँगी।

सागर और गोपाल के साथ जब शेखर बाई जी के कोठे पर पहुँचा तो वहाँ दूसरा ही मसला चल रहा था। सेठ गणेशप्रसाद रो रहे थे। वे बाई जी से कह रहे थे कि उमा बाई मेरे लड़के को लेकर कहीं भाग गईं। उनको जाते हुए कुछ लोगों ने देखा है। और बाई जी अलग ही हालबेहाल हो रही थीं कि उन्होंने जो सोने की चिड़िया पाली थी वह पता नहीं कहाँ उड़ गई। उमा उनके कोठे की शान थी और उनकी सबसे बड़ी दौलत।

जाते ही शेखर ने वहाँ की परिस्थिति को समझ लिया। फिर वह कहने लगा बाई जी और सेठ जी से, “न उमा कहीं गई है और न सेठ जी, आपका लड़का। दोनों मिल जायेंगे। वे कुशलपूर्वक है। उनके विषय में मुझे आप लोगों से कुछ बातें करनी है। और वे बातें सबके सामने न कर मैं एकान्त में करूँगा और वे बातें गुप्त रहेगी। अगर ऐसा नहीं होता है तो यह समझ लो कि दोनों कभी नहीं मिलेंगे। जहाँ से पंछी उड़कर आये थे वही पहुँच गये हैं।”

पहले सेठ जी को शेखर एक कमरे में ले गया और उनको बतलाया कि उमा मेरी पत्नी है और आप का खरीदा हुआ पुत्र मेरा लड़का है। मैं पच-भ्रष्ट हो गया था। तभी ऐसा नीच काम किया कि अपनी ओलाद को बेचा। मैंने और उमा ने अब यह तय कर लिया है कि फिर से अपनी गृहस्थी बसायेंगे। लड़का मेरे पास आ गया है। उमा की गोद में है। आप अपने रुपये ले लीजिये। मैं चेक देता हूँ; लेकिन नहीं, नकद दूँगा जैसे लिया था। शराफत इसी में है कि चुपचाप यह काम हो जाये और किसी को पता न चले। आप सब जगह यह प्रचार कीजिये कि लड़का खो गया, फिर मिला नहीं। और यदि आप मेरी बात नहीं मानते हैं तो छीछालेदर हो जायेगी। आप अदालत की शरण लेंगे तो वहाँ सबूत में मैं आपका कच्चा चिट्ठा खोलकर रख दूँगा।

सेठ जी की साँस ऊपर नीचे जल्दी-जल्दी आने जाने लगी। वे हक्का-बक्का से शेखर का मुँह देखते रह गये। उसने उन्हें फिर समझाया तथा जोर

देकर कहा कि सेठ जी मामला संगीन नहीं, आसान है। आप मेरी जिन्दगी के बनने में मदद कीजिये, मैं जीवन भर आपका यह एहसान कभी नहीं भूलूँगा। बोलिए, बताइये कि आपको मेरी बातें मन्जूर है।

सेठ जी फिर भी नहीं बोल पाये। वे घबड़ा से गये थे और उन्हें लग रहा था कि उनकी जिन्दगी की सबसे बड़ी खुशी शेखर ने छीन ली है। देर तक शेखर उनको समझाता रहा। अन्त में वे किसी तरह इतना कह पाए कि इस समय मैं बहुत परेशान हूँ, शेखर। फिर सोच समझकर तुम्हें जबाब दूँगा।

इसके बाद शेखर की बाई जी से एकान्त में बातें हुई। उसने उनको भी बतला दिया कि उमा मेरी पत्नी है और शोभा मेरी लड़की। हम लोग बहुत भटके। अब अपनी मन्जिल पर आ गये हैं। उमा अब आपके यहाँ नहीं रहेगी। मैं लेने आया हूँ शोभा को भी। तुम दोनों की कीमत ले लो जो दी थी। शोभा को मेरे हवाले कर दो और पूछने वालों को बता दो कि वह उमा के पास चली गई है। उमा उसे बहुत चाहती है।

मोती बाई शेखर की बातें सुनकर सन्नाटे में आ गई। वे चौंककर बोली—“यह सब कुछ नहीं चलेगा, शेखर। मैं तुम्हारी बात नहीं मानूँगी। मैं उमा को चाहती हूँ, तुम्हारी दलीले नहीं। उसको फौरन यहाँ लाकर छोड़ जाओ। शोभा तुम्हारे साथ कभी नहीं जायेगी।”

“तब तो फिर घी निकालने के लिए उंगलियाँ टेढ़ी करनी पड़गी। मैं अखबारों में विज्ञापन दे दूँगा कि शोभा मेरी लड़की है और उमा मेरी पत्नी। मैं अदालत से लड़कर कानून के जरिये शोभा को यहाँ से ले जाऊँगा। तुम कुछ भी नहीं कर पाओगी। बल्कि मुफ्त में उल्टी बदनाम हो जाओगी कि शोभा को जन्म तुमने नहीं दिया। वह सब ढोंग था। सोचो तो बाई जी, किसी का घर बनता है तो बनने दो, विधन न डालो।”

शेखर यह कहकर बाई जी के उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा और वे लाल पीली हो उस पर बिगड़ने लगीं। वे बराबर यही कहे जा रही थीं कि नहीं मैं शोभा को नहीं दूँगी और तुम लाओगे कैसे नहीं, तुम्हें उमा को लाना पड़ेगा। वह तुम्हारी नहीं, मेरी अमानत है।

देर तक शेखर और बाई जी की बातें होनी रही। नतीजा कुछ नहीं निकला। दोनों उलझे रहे, दोनों अपनी अपनी बात एक दूसरे से मनवाने की कोशिश करते रहे। समय अधिक होता जा रहा था। बाहर सेठ जी बैठे थे हाथ भर का लम्बा मुँह लटकाये और दूसरे कमरे में सागर, गोपाल। वे आपस में गुप्तगू कर रहे थे कि क्या बात हुई? क्या शेखर दादा बाई जी को राजी नहीं कर सके। नभी सहमा उनकी निगाह गई। दोनों ने देखा कि उस्ताद झुम्मन, कादिर और मटरू तीनों उस कमरे के बाहर किवाड़ों पर कान दिये खड़े हैं। वे कुछ चौक गये। सागर ने वही से जोर से आवाज दी—‘शेखर दादा, बाहर आइये। बहुत देर हो गई। अभी हम लोगो को न जाने कितना काम करना है। जल्दी कीजिये। हम……।’

अभी सागर इतना ही कह पाया था कि उसने देखा उसके सामने आगे-आगे गोपाल के पिता आ रहे हैं और पीछे-पीछे उमा। वह चौक गया और गोपाल की ओर देखने लगा।

उमा को देखते ही सेठ जी पुनः रोने लगे। लेकिन उमा ने उनकी ओर देखा भी नहीं। वह गोपाल के पिता को वही छोड़ बाई जी के कमरे की ओर चल दी। जैसे ही वह दरवाजे पर पहुँची वैसे ही शेखर बाहर निकला। वह उसे देखकर चौक गया और बोला—‘तुम यहाँ क्यों आ गई, उमा? बाई जी से फँसला नहीं हो सका। मुझे मुकदमा लड़ना पड़ेगा। आओ चलो’ यह कहकर शेखर ने उमा का हाथ पकड़ लिया और उसे अपनी ओर खींचने लगा।

झुम्मन, कादिर और मटरू ये तीनों अब दरवाजे से परे हटकर एक ओर जा खड़े हुए थे। उस कोठे में रहने वाली सभी युवतियाँ उमा को विस्मय और कौतूहल भरी दृष्टि से देख रही थीं। उसने शेखर से अपना हाथ छुड़ाया और कमरे की ओर जाने को उद्धत हो कहने लगी—‘अब आई हैं तो बाई जी से मिलकर ही जाऊँगी। उनसे विदा माँगना मेरा कर्तव्य है।’

‘अच्छा! तो तुम करो कर्तव्यपालन, मैं जाता हूँ।’ यह कहकर भावावेश में शेखर वहाँ से जाने लगा तो उमा उसका मार्ग रोक गम्भीर स्वर में कहने लगी—‘जाते क्यों हो? तुम भी आओ। मैं थोड़ी देर ही रुकूँगी।’

शेखर उमा को कुछ उत्तर दे इसके पहले ही बाई जी दोनों के बीच में आ उपस्थित हो गई। वे उमा के पास और तनिक सरक आईं, फिर उसके सिर पर अपना प्यार भरा हाथ रख रुआसीसी होकर बोली—“कहाँ चली गई थी, उमा ? मैं हैरान थी, मेरे होश-हवास गुम हो गये।”

“भाग्य ने करवट बदली और अचानक ही मेरी जिन्दगी में नया मोड़ आ गया। मैं बरबस ही उस ओर मुड़ गई।” यह कहकर उमा ने शेखर की ओर इंगित कर बाई जी को बतलाया—“ये मेरे पति हैं। अब मैं इनके साथ रहूँगी। आप से विदा लेने आई हूँ। आशीर्वाद दीजिये कि आपकी उमा खूब फले फूले।”

बाई जी का चेहरा बिल्कुल सफेद पड़ गया। उन्हें जैसे बिजली का करेन्ट सा लग गया। वे सक्ते की हालत में आ उमसे पूछने लगी—“यह तुम क्या कह रही हो, उमा ? तुमने जो कुछ भी कहा मेरी समझ में नहीं आया। शेखर के समझाने-बुझाने में न आया। यह आदमी अच्छा नहीं, बहुत बुरा है। यह...”

“माफ करना, बाई जी। मैं आपको बतला चुकी हूँ कि ये मेरे पति हैं। मैं इनके खिलाफ एक भी शब्द सुनना पसन्द नहीं करूँगी। आप उतावली न हों। परेशान होने की कोई जरूरत नहीं। चलिये, अन्दर चलिये। वहाँ बैठकर बातें करिये। मैं आपका वही लिहाज करती हूँ जैसा शुरू में करती आई हूँ।” यह कहकर उमा बाई जी को कमरे में लिवाले गई। शेखर भी दोनों के पास जाकर बैठ गया।

अब शेखर चुप था। बाई जी मुन रही थी और उमा कह रही थी—“ये (शेखर) शोभा को लेने आये थे, आपको समझा नहीं पाये। इसीलिए मैं आई हूँ। मैंने आपकी सेवा की जब तक मुझसे हो सकी और अब जाना चाहती हूँ। मेरे सौदे में आपको घाटा नहीं, मुनाफा ही रहा। मैं आपका एहसान जिन्दगी भर नहीं भूलूँगी कि कोठे पर रखकर भी आपने मुझे वेदया वृत्ति से दूर रखा, टेढ़े दिन बीत गये। केतु और राहु दोनों मुझे छोड़ गये। अब मैं अपनी गृहस्थी बसाना चाहती हूँ। मुझे दुर्घ-दुर्घी जाने दीजिये और कर

दीजिये मेरे साथ शोभा को भी । उसका भविष्य यहाँ कभी नहीं बन सकता । उसे आप भी प्यार करती है और मेरी तो दुलारी है ही ।”

उमा ने बाई जी को सब कुछ बतलाया । उसने अपनी कथा बचपन से लेकर अब तक की बयान कर दी और फिर लगी फूट-फूटकर रोने बाई जी के वक्ष से सिर लगा । वे उसे चुप कराने लगी । उन्हें बोलने का मौका ही नहीं मिला । वे खुद भी रोने लगी ।

उमा की कहानी सुनकर बाई जी का हृदय मोम की तरह पिघल गया । वे रोते-रोते उसे गले लगाकर बोली—“उमा, तुमने कितना दुख सहा, हृद हो गई । अब तुम्हारे दिन बहुरे है । जाओ, मैं तुम्हें नहीं रोकूँगी और तुम्हारी इच्छा अधूरी क्यों रहे । ले जाओ अपने साथ शोभा को भी । वह भी तुम्हारे बिना रह नहीं सकती । जब उसका ब्याह हो तो मुझे निमंत्रण जरूर देना । वेश्या हूँ तो क्या हुआ मैं उसके पैर पूजूँगी और कन्यादान दूँगी । और एक बात अच्छी याद आ गई कि तुम लोग अपनी जिन्दगी अच्छे ढंग से शुरू करो और अच्छी तरह बिताओ । पैसा लगाओ और उससे पैसा कमाओ । इसके लिये जितना रुपया जरूरत हो ले जाओ । मुझे भी अब पैसे की चाह नहीं रह गई है, उमा । मन में वैराग सा आ गया है ।”

“नहीं बाई जी, रुपयों की जरूरत नहीं । उनका हम लोग क्या करेंगे । घन दोस्त भी होता है दुश्मन भी । वह आदमी को बना देता है वही आदमी को बिगाड़ देता है । हम लोग जीवन बितायेंगे बिल्कुल सादा और साधारण । बस, अब चलने दो । फिर जब आप कभी याद करेंगी तो उमा दौड़ी आएगी चाहे वह कहीं हो और आप का वही आदर करेगी जो करती है ।”

यह कहकर उमा जाने के लिये तैयार हुई । बाई जी ने शोभा को भी वहाँ बुलवा लिया, फिर कलेजे कर पत्थर रख उन सबको विदा किया । सागर, गोपाल और उसके पिता, ये लोग पीछे रह गये । शेखर, उमा और शोभा तीनों के साथ-साथ बाई जी नीचे आई । एक ताँगे पर सब बैठ गये । ताँगा चल पड़ा तो फिर रो दी बाई जी और उमा भी आँचल से अपने आँसू पोछने लगी ।

पीछे दूसरा ताँगा भी आरहा था । उस पर सागर आदि बैठे थे । वे

सभी प्रसन्न थे। ऐसा लग रहा था कि एक युग बदल गया है, पुराने की जगह नया आ गया है और यह कलयुग नहीं सतयुग है।

४६

सदेरे जल्दी में उमा के माथे पर कपड़े की पट्टी बांध दी गई थी। अब घर पर कम्पाउन्डर बुला गोपाल ने उमकी ड्रेसिंग करवाई। उस दिन और उस रात शेखर तथा उमा दोनों गोपाल के घर मेहमान रहे। फिर प्रातः की गाड़ी से कानपुर चले गये।

बसुमती और बाबू श्यामलाल शेखर को देखकर बहुत प्रसन्न हुए। और जब सागर ने उन्हें उमा का सब हाल बतलाया तो बसुमती ने उसे गले से लगा लिया और बाबू श्यामलाल का भी आशीर्वाद-भरा हाथ पहुँच गया, बह के सिर पर। कान्ता अपनी भाभी को पा फूली नहीं समाई। वह खुशी में बावरी हो रही थी। और शेखर अपने चाचा से कह रहा था कि अब कहीं नहीं जाऊँगा, चाचा जी। मैंने दुनिया देख ली। उसमें धोखा ही धोखा है। जिन्दगी वही अच्छी होती है जो सरल तथा व्यस्त रहती है। मेरी आँखें खुल गईं। मैं पाप-पुण्य और धर्म-ईमान सबसे खेल लिया। और चतुर खिलाड़ी होकर भी हार गया। चाचा जी, यही अफसोस है। मैं तूफान था। उमा को तिनके की तरह खूब नचाया। अब वह जीत गई और मैं अपनी हार मान बैठा हूँ।

बाबू श्यामलाल शेखर की ये बातें सुन गद्-गद् हो गये। उन्होंने उसे प्रोत्साहन दिया और उसकी पीठ ठोकी। फिर सराहने लगे उसके भाग्य को जो सुबह के भूले की तरह साँझ को घर लौट आया था।

अगले मास सागर का ब्याह हुआ। उमा जेठानी के पद पर आसीन

थी। उसने अपनी देवरानी को हाथोंहाथ लिया। फिर महीने बीते और एक साल हो गया किन्तु उमा उस चहार दीवारी से बाहर नहीं निकली। एक दिन उसे समाचार मिला कि मोती बाई प्रयाग चली गई हैं। वे अब वही रहेंगी संगम पर। वे कोठा बेच गई हैं, अपने यहाँ की युवतियों को मुक्त कर गई हैं और अपनी पूँजी का चौथाई भाग एक अनाथालय को दान कर गई है। चौथाई रकम एक विधवा आश्रम को तथा आधे धन की रजिस्ट्री कर गई है शोभा के नाम। वे अब नहीं आयेंगी। प्रयाग में ही उनके शेष दिन बीतेगे।

उमा ने एक लम्बी साँस ली और फिर संतोष कर लिया कि बाईजी भी पतन के बाद जागी हैं। अच्छा है। यह जागरण उनका मंगल प्रतीक बने। भजन और पूजन में उनका जीवन बीते।

उमा के माँ-बाप को जब मालूम हुआ कि उमा अब कानपुर में है, उसके दो बच्चे हैं और वह शेखर की पत्नी है तो वे स्वयं दौड़े आये, उससे मिले और उसको सुखी तथा सम्पन्न देखकर हर्षित हुये। साल डेढ़ साल के बाद उमा भी एक बार टीकमपुर गई। वहाँ उसे वह दृश्य याद आ गया जब उसका समुर उसे जबरदस्ती लिवा ले गया था। वह अपने अतीत की घटनाओं को जब याद करने लगती तो इस तथ्य पर पहुँचती कि मेरे पास अपना ईमान था, अपनी वेबसी और अपनी मजबूरी। मैं अबला थी, लेकिन मेरी आत्मा में बल था। और उनमें (शेखर) अधर्म था। वे जिन्दगी को चौपड़ समझकर उससे खूब खेलते रहे। जीत पर जीत हुई, हार का नाम नहीं। आखिर अनीति नहीं टिकी और वे एक दिन हार गये। लेकिन मुझ खुशी है कि यह हार उनकी जिन्दगी की सबसे बड़ी जीत है। वे मेरे पति हैं, मेरे जीवन, मेरे देवता और मेरे स्वामी।

इस भाँति उमा के मन में अब पति के प्रति श्रद्धा ही श्रद्धा भरी थी। वह उसे प्यार करती और उस पर बलि-बलि जाती; क्योंकि अब वह तूफान के घोड़े पर सवार न हो तिनके का सहारा ले अपनी मंजिल तय कर रहा था। वह अपने को पहचान गया था और उसे स्वयं अपने पर विश्वास हो गया था।
